रूदाद जमाअत इस्लामी

भाग-2

इजतिमा दारूल इस्लाम, जमाअत इस्लामी
(26-27 मार्च, 1944 ई०)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।)

दारुल इस्लाम के इजतिमा की कार्रवाई

एलान के मुताबिक़ 26-27 मार्च, 1944 को दारुल इस्लाम, पठानकोट (पंजाब) में जमाअत इस्लामी (पंजाब, सिंध, सरहद, कश्मीर और बलूचिस्तान) के अरकान (मेम्बरों) का एक इजतिमा हुआ, जिसमें मरकज़ की इजाज़त से जमाअत के कुछ हमदर्द भी शामिल हुए। मौलाना अमीन अहसन साहब इसलाही (सराय मीर, ज़िला-आज़मगढ़, यू०पी०) और जनाब मुहम्मद हसनैन सैयद साहब (लहेरिया सराय, ज़िला-दरभंगा, बिहार) भी इसमें शरीक हुए। कुल मिलाकर क़रीब 150 लोग इस इजतिमा में शरीक हुए।

26 मार्च को 9 बजे सुबह से 12 बजे दोपहर तक और फिर ज़ुह्र की नमाज़ से अस्र की नमाज़ तक अलग-अलग जगहों से आनेवाली जमाअतों ने अमीर जमाअत के सामने खुली मुलाक़ातों में मक़ामी हालात पेश किए। अपनी-अपनी कारगुज़ारियों का मुख़्तसर ब्यौरा पेश किया, अपनी परेशानियाँ ज़ाहिर कीं और ज़रूरी कामों के लिए मशविरे भी हासिल किए। इसी बीच कुछ लोगों ने अपने आपको जमाअत की रुकनियत (Membership) के लिए पेश किया। इसपर अमीर जमाअत ने कुछ अहम बातें पेश कीं, जिन्हें सिलसिलेवार यहाँ दर्ज किया जाता है-

हमारे यहाँ जमाअत में शामिल होने में तो कोई दिक़्क़त नहीं है, मगर इसमें शामिल होने से ज़िम्मेदारियों का जो भारी बोझ उठाना पड़ता है, उसके वज़न को आगे बढ़ने से पहले महसूस कर लेना चाहिए। रुकनियत की ज़िम्मेदारियों का सही-सही अन्दाज़ा किए बग़ैर जो लोग हमारी तरफ़ बढ़ आए हैं, वे नस्बुलऐन (लक्ष्य) में एक होने के बावजूद ज़्यादा देर तक हमारा साथ नहीं दे सकते। इसकी वजह यह है कि शुरू में काम करने के तरीक़े के इख़तिलाफ़ पर गहरी नज़र नहीं होती, लेकिन जैसे-जैसे वक़्त गुज़रता जाता है यह इख़तिलाफ़ उभरने लगता है और लोग अपने-अपने पसन्दीदा काम के तरीक़े की मुहब्बत के जोश में आकर जमाअत के नज़्म (अनुशासन) की ख़िलाफ़वर्ज़ी कर बैठते हैं और अक्सर नस्बुलऐन तक को भूल जाते हैं। अगर आप लोगों ने बहुत अच्छी तरह से काम करने के हमारे तरीक़े को समझ लिया है और उसके साथ ही काम करने के दूसरे तरीक़ों और हमारे काम करने के तरीक़े का फ़र्क़ समझ लिया हो और अपनी ख़ुशी और मरज़ी से दूसरे तरीक़ों को छोड़कर हमारा तरीक़ा अपनाने पर राज़ी हों तो आइए, बिसमिल्लाह! वरना जल्दी न कीजिए। हमारे लिट्रेचर का गहराई से मुताला (Study) करते रहिए और हमारे काम को कुछ और अर्से तक देखकर आख़िरी राय क़ायम

कीजिए।

अल्लाह का शुक्र है कि मुसलमानों में अभी तक सही अक़ीदा रखनेवाले लोगों की एक बड़ी तादाद पाई जाती है। इन लोगों के पास हक़ (सच) मौजूद है, मगर फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि आम तौर से अलग-अलग गिरोह हक़ के किसी पहलू या हिस्से को लेकर चल रहे हैं, जबकि हम पूरे हक़ को लेकर चलना चाहते हैं। आप लोगों के साथ पहले हक़ का जो पहलू था, वह बदस्तूर साथ रहेगा, मगर इसपर बस न कीजिए। अब आपको दूसरे पहलुओं और हिस्सों को भी इसके साथ शामिल करना है।

इसके बाद इस मौक़े पर तबलीग़ के तरीक़े के मसले पर बातचीत हुई। इस सिलसिले में अमीर जमाअत ने अपना ख़्याल मुख़्तसर तौर से यूँ पेश किया—

> ''जहाँ तक किसी ख़ास (फ़िक़्ही) मसलक की तबलीग़ की बात है तो आम तौर पर मुसलमानों की जमाअतें इस सिलसिले में सख़्त रवैया अपनाती हैं और जज़बात को भड़काकर और मुनाज़राना दाव-पेंच और ज़बान की तेज़ी के साथ लोगों को अपने अन्दर जज़्ब करती हैं। लेकिन हमारे मसलक की तबलीग़ के लिए यह तरीक़ा मुनासिब नहीं है। इस मामले में बहुत ही सब्र से काम लेने की ज़रूरत है। यह तहरीरी और तक़रीरी मुनाज़िरे और बहसें जो आम तौर पर राइज हैं, इनमें मुबल्लिग़ ग़ैर शऊरी तौर पर आपे से बाहर हो जाता है और महसूस तक नहीं करता कि मैं ख़ुद अपने प्यारे नसबुलऐन की जड़ों पर कुल्हाड़ा रख रहा हूँ। इससे हटकर हमें एक डॉक्टर और हकीम की तरह काम करना है, जो आख़िर दम तक कोशिश करता है कि जिस्म का बीमार अंग तन्दुरुस्त हो जाए। और अगर उसे काटकर जिस्म से अलग करता है तो उस वक़्त जबकि वह दूसरे सभी उपायों को आज़मा लेने के बाद उसके इलाज की तरफ़ से मायूस और निराश हो जाता है। यहाँ यह हाल है कि हमारे डॉक्टर सबसे पहले जिस्म के बीमार हिस्से को काट फेंकने के लिए तैयार हो जाते हैं।
>
> याद रखिए कि अवाम की यह भीड़ जो आपके आस-पास जमा है, इनमें से जो लोग कुफ़्र, शिर्क या फ़िस्क़ (बदअमली) के मरीज़ हैं, उनका इलाज ग़ुस्सा और कड़वाहट से करने की बजाय सब्र और हमदर्दी से करना है। इन बीमार हिस्सों को तुरन्त काटकर नहीं फेंक देना है, बल्कि पहले सारे उपाय करके देख लेना है।

अवाम की मजबूरी का अन्दाज़ा इससे कीजिए कि इन लोगों में बहुत-से मुशरिकाना अक़ीदे और रस्म व रिवाज ख़ुद मज़हबियत ही के पाक दरवाज़े से दाख़िल हुए हैं। यही वजह है कि इनके सुधार का मसला बहुत पेचीदा हो गया है, और इस मुहिम को सब्र और बरदाश्त ही से जीता जा सकता है। अरब में भी यही हालात थे और वहाँ भी ठण्डे तरीक़ों से तबलीग़ का काम किया गया।''

पहली बाक़ायदा बैठक

प्रोग्राम के मुताबिक़ पहली बैठक उसी दिन मग़रिब की नमाज़ से लेकर इशा की नमाज़ से कुछ समय पहले तक जारी रही। इस बैठक में अमीर जमाअत ने अपनी तक़रीर में जमाअत के काम और उससे मुतल्लिक़ ज़रूरी मसलों पर ज़रूरी तबसिरा (टिप्पणी) किया। यह तबसिरा एकदम नपा-तुला था। इसका मक़सद न तो मुख़ालिफ़ों पर रोब डालना था और न ही रफ़ीक़ों के जज़बात को भड़काना, बल्कि इस तक़रीर से जमाअत को उसके कमज़ोर पहलुओं पर मुतवज्जोह किया गया, ताकि लोग इसके सुधार की फ़िक्र करें। वह तक़रीर यह है—

अमीर जमाअत की तक़रीर

अल्लाह की हम्द व सना और रसूल पर दरूद व सलाम के बाद :

हज़रात! जैसाकि आपने ख़ुद भी अन्दाज़ा किया होगा कि हमारे इजतिमा 'जलसों' से बिलकुल अलग क़िस्म के हैं। जलसों और कांफ्रेंसों में ज़्यादातर तक़रीरें होती हैं, जुलूस निकलते हैं, नारे बुलन्द किए जाते हैं, लेकिन इस क़िस्म की कोई चीज़ यहाँ न कभी हुई, न होगी। हमारे इन इजतिमाओं के करने का असल मक़सद हंगामा और शोर-शराबा करना नहीं है और न ही लोगों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचना हमारा मक़सद है, बल्कि मक़सद सिर्फ़ इतना है कि हम एक दूसरे से वाक़िफ़ हों, साथ ही एक दूसरे के क़रीब होते जाएँ और आपस में मदद और सहयोग का रास्ता निकालें। अमीर आपसे और आप अमीर से शख़्सी तौर पर वाक़िफ़ हों और उसे आपकी ताक़त और सलाहियतों का ठीक-ठीक अन्दाज़ा हो, ताकि वह आपसे सुव्यवस्थित काम लेने की कोशिश करे। समय-समय पर हम अपना और अपने कामों का जायज़ा लेते रहें, अपनी ग़लतियों और कोताहियों को समझें और उन्हें दूर करने की फ़िक्र करें और आपसी मशविरों से अपने काम को आगे बढ़ाने की तदबीरें सोचें। ग़रज़ यह कि हमारे ये इज़तिमा अपने अन्दर अमली रूह रखते हैं। इनमें जलसों जैसी कोई चीज़ न आप पा सकते

हैं और न आपको पाने की ख़्वाहिश करनी चाहिए। अगर अभी तक जलसेबाज़ी की पुरानी आदतों का कुछ असर अपने अन्दर पाते हों और उनकी कुछ कमी अपने अन्दर महसूस करते हों तो उसे भी निकाल बाहर करने की कोशिश कीजिए। इन हंगामों में सच पूछिए तो कुछ नहीं रखा है। फ़िज़ूल कामों में बिलकुल वक़्त बरबाद न कीजिए। बस काम की बात कीजिए और अपना फ़र्ज़ अदा करने में लग जाइए। आज सुबह से मैं विभिन्न मक़ाम की जमाअतों और लोगों के साथ बातचीत और विचार-विमर्श करता रहा हूँ। मैंने महसूस किया है कि कभी-कभी ग़ैर ज़रूरी बातें करने की ख़्वाहिश लोगों में लौट आती है और कभी-कभी जो कुछ वे कहते हैं, हक़ीक़त उसके ख़िलाफ़ होती है। यह एक कमज़ोरी है, जिसे दूर करना चाहिए। इसमें शक नहीं कि जो आदतें एक लम्बी मुद्दत से जड़ पकड़े हुए हैं, वे छूटते-छूटते ही छूटेंगी। मगर उन्हें छोड़ने की तरफ़ आपकी तवज्जोह और कोशिश ज़रूरी है।

अब तक अलग-अलग जगहों पर जाकर मैंने देखा, और बाहर की ख़बरों से जो कुछ अन्दाज़ा लगाया और आप लोगों से अलग-अलग और इकट्ठा बातचीत करके जो मालूमात हासिल कीं, उनकी बिना पर मैं समझता हूँ कि हमारे बहुत ही एहतियात के बावजूद एक अच्छी-ख़ासी जमाअत हमारे निज़ाम में दाख़िल हो गई है, जिसे सच पूछिए तो इस काम से कोई गहरी दिलचस्पी नहीं है। दिलचस्पी के इस अभाव की साफ़ पहचान यह है कि यहाँ इजतिमा के लिए सभी को बुलाया गया था और एलान किया गया था कि ज़्यादा से ज़्यादा अरकान (Members) शरीक होने की कोशिश करें, मगर बहुत-से अरकान किसी वाक़ई मजबूरी के बिना नहीं आए, बल्कि बहुतों ने मजबूरी बयान करने की ज़रूरत भी न समझी। लोगों के लिए उनके मामूली काम, रोज़मर्रा के उनके काम, उनके घरेलू काम, उनके दुनियावी फ़ायदे इससे बढ़कर अहमियत रखते हैं कि वे जमाअत की पुकार पर लब्बैक (मैं हाज़िर हूँ) कहें, और इसी बिना पर वे कोई मजबूरी या रुकावट न होने के बावजूद बैठे रह गए। यह इस बात का सबूत है कि हमारे साथियों को इस काम से सच्ची दिलचस्पी और लगाव नहीं है। अगर सही मानों में वे जानते होते कि यह इजतिमा क्या माने रखता है और जमाअत की पुकार से उनपर क्या ज़िम्मेदारी आ जाती है; और जो वादा उन्होंने अपने रब से किया है, उससे क्या ज़िम्मेदारियाँ उनपर आ पड़ती हैं तो वे अपने बड़े से बड़े दुनियावी फ़ायदे और सख़्त से सख़्त मशग़ूलियात को भी यहाँ की हाज़िरी पर कभी भी तरजीह (प्राथमिकता) न देते। जब आज उनका यह हाल है तो क्या उम्मीद की जा सकती है कि कल कोई बड़ी मुहिम सामने हो और हम उन्हें पुकारें तो हमारी पुकार पर दौड़े चले आएँगे। जमाअती नज़्म (व्यवस्था) से जुड़ जाने के बाद आदमी के लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि जमाअत की पुकार सुनकर दौड़ पड़े और सारे काम छोड़ दे। इससे अलग सिर्फ़ वे हालात हैं जिनमें ख़ुदा और रसूल ने ख़ुद छूट दी

है। इन हालात के सिवा बाक़ी सभी हालतों में जमाअत में शामिल होने के लिए दूसरी हर मशग़ूलियत से नज़र हटा लेना ज़रूरी है। जब तक जमाअत के अरकान में यह कैफ़ियत पैदा नहीं होगी, जमाअत का निज़ाम बिलकुल बेजान होगा। किसी का यह ख़याल करके बैठ जाना कि इस वक़्त कोई ज़रूरी काम नहीं है, इजतिमा की कोई हक़ीक़ी ज़रूरत नहीं है, अगर इस वक़्त मैं शामिल न हुआ तो कोई नुक़सान न होगा, हकीक़त में एक ग़लत ख़याल है। मैं कहता हूँ कि अगर यहाँ सिरे से कोई काम न होता, बल्कि आपको सिर्फ़ जमा हो जाने के लिए पुकारा जाता, तब भी आपको एक आवाज़ पर जमा हो जाना चाहिए था। क्योंकि इस शुरुआती दौर में यही अपने आपमें एक अहम काम है कि आपके अन्दर एक आवाज़ पर जमा हो जाने की सलाहियत पैदा हो। इस अनुशासन (Discipline) के बिना आप कौन-सा काम अनुशासन और सहयोग के साथ कर सकेंगे?

यह सुस्ती, जिसका इज़हार इस इजतिमा के मौक़े पर हुआ है, कोई इत्तिफ़ाक़ी चीज़ नहीं है जो इस वक़्त पेश आई है। मुझे मालूम हुआ है कि कई जगहों पर हमारी जमाअत के कुछ या अक्सर अरकान हफ़्तेवार इज़्तिमाओं में शरीक नहीं होते, या शरीक होते हैं तो पाबन्दी के साथ नहीं, बल्कि गंडेदार तरीक़े से कि जब दुनिया की कोई छोटी-बड़ी मशग़ूलियत उन्हें न हुई और तफ़रीह को भी जी चाहा तो मक़ामी जमाअत के इजतिमा में आ गए। कई जगहों पर तो हफ़्तेवार इजतिमा का क़ायदा ही सिरे से ख़त्म कर दिया गया है और बहुत-से अरकान ऐसे भी हैं जो जमाअत में दाख़िल होने और जान-बूझकर ख़ुदा से बन्दगी का अहद ताज़ा करने के बाद वैसे ही ठंडे और बेजान हैं जैसे उससे पहले थे। न उनकी ज़िन्दगी में कोई बदलाव आया, न जाहिलियत के माहौल से उनकी कोई जंग ठनी, न अल्लाह की तरफ़ बुलाने के लिए कोई सरगर्मी उनमें पैदा हुई और न हमसफ़र साथियों के साथ कोई लगाव उनके अन्दर पाया गया, जबकि हमने शुरू में जमाअत क़ायम करते वक़्त भी कह दिया था और उसके बाद भी बार-बार कहते रहे हैं कि हमें ज़्यादा तादाद की नुमाइश करने के लिए अरकान की बेकार भरती नहीं करनी है। हमें वह मोटापा नहीं चाहिए जो जिस्म को ताक़तवर बनाने के बजाए उल्टे बोझल बना दे। हमें सिर्फ़ उन लोगों की ज़रूरत है जिन्हें सचमुच कुछ करना है और जो किसी बाहरी दबाव से नहीं, बल्कि अपने ईमान के अन्दरूनी तक़ाज़े से ख़ुदा के दीन को क़ायम करना चाहते हों। लेकिन अफ़सोस कि बार-बार इन बातों को समझाने के बावजूद इस क़िस्म के लोग हमारे इस निज़ाम में भी दाख़िल हो गए जो इससे पहले सिर्फ़ मुसलमानों के गिरोह से जुड़ जाने ही को निजात के लिए काफ़ी समझ लेने के आदी रहे हैं। उनसे मैं अर्ज़ करूँगा कि अगर आपको यही कुछ करना था तो इस ग़रीब जमाअत को ख़राब करना क्या ज़रूरी था। आपको अगर सचमुच इस मक़सद से हमदर्दी थी जिसकी ख़िदमत के लिए यह जमाअत बनी है और

इसी हमदर्दी ने आपको हमसे ताल्लुक़ पैदा करने पर राज़ी किया था तो आपकी हमदर्दी का कम से कम तक़ाज़ा यह होना चाहिए था कि आप इस जमाअत को ख़राब करने से परहेज़ करते और वे बीमारियाँ उसे न लगाते, जिनकी वजह से मुसलमान एक लम्बी मुद्दत से कोई सही काम नहीं कर सके हैं।

इससे भी ज़्यादा अफ़सोस की बात यह है कि पिछले दो साल के बीच में कई लोग हमारी जमाअत से अलग हुए हैं और एक-दो मुसतसनियात (Exceptions, अपवादों) के सिवा क़रीब सबके अन्दर इस जुदाई ने उल्टे पाँव वापसी की शक्ल अपना ली है। आप जानते हैं और जो आदमी भी हमारे काम करने के तरीक़े से वाक़िफ़ है, इस बात को जानता है कि हमने जमाअत में लेने से पहले हर आदमी को सोचने-समझने का मौक़ा दिया है। दीन को और उसके तक़ाज़ों और माँगों को, अपने मक़सद और उसके हासिल करने के तरीक़े को अच्छी तरह खोलकर बयान किया है। फिर जमाअत में दाख़िल होने के मौक़े पर भी एक-एक आदमी के सामने अच्छी तरह उन ज़िम्मेदारियों को रख दिया है जो तौहीद व रिसालत को समझ-बूझकर मान लेने से उनपर आती हैं। इस तफ़सील के बाद रुकनियत (Membership) के हर उम्मीदवार से मालूम कर लिया है कि क्या वह इस इक़रार के बोझ को पूरी तरह महसूस करते हुए ख़ुशी और रज़ामन्दी से यह ज़िम्मेदारी उठाने के लिए तैयार है? इस तरह हर शक-शुबह और हर ग़लतफ़हमी के बिना जिन लोगों ने इक़रार किया, सिर्फ़ वही जमाअत में लिए गए। ऐसे सोचे-समझे और जँचे-तुले इक़रार के बाद जमाअत के निज़ाम से किसी आदमी के अलग होने की अगर कोई सही वजह हो सकती थी तो वह यही थी कि वह हममें निफ़ाक़ और कपट की बू महसूस करके, या हमारे निज़ाम (व्यवस्था) में कोई लाइलाज कमज़ोरी पाकर हमसे अलग होता और फिर हमसे ज़्यादा अच्छे तरीक़े से तेज़ रफ़तारी के साथ इस मक़सद की तरफ़ क़दम बढ़ाता, जिसको उसने ख़ूब ठंडे दिल से जान-बूझकर अपनी ज़िन्दगी का मक़सद क़रार दिया था, और इस सूरत में मुश्किल न था कि उसको अपने से आगे पाकर हम ख़ुद उससे जा मिलते। लेकिन यहाँ जो बात देखने में आ रही है वह यह है कि लोगों ने पूरे शऊर के साथ, जल्दबाज़ी में नहीं बल्कि ख़ूब सोच-समझकर, हमसे नहीं बल्कि अपने अल्लाह से इक़रार किया था। वे जमाअत से अलग हुए और अलग होकर उनमें से कुछ ख़ामोश और बेहरकत हो गए, कुछ उन गिरोहों की तरफ़ पलट गए जिनके बारे में वे कहते थे कि उनके तरीक़ों को ग़लत पाकर और उनसे मायूस होकर और ख़ूब सोच-समझकर इधर आए हैं। और कुछ ज़ालिम तो ऐसे पलटे कि जो दीनदारी और शरीअत की पाबन्दी उन्होंने इख़तियार की थी और अख़लाक़ी इसलाह के जो असरात क़बूल किए थे, उनके भी ज़्यादातर हिस्सों पर पानी फेर दिया और वही सब कुछ करना शुरू कर दिया जो पहले करते थे। कुछ लोगों के अन्दर वापसी

के ज़ोर का यह हाल देख रहा हूँ कि वे नमाज़ तक को छोड़ बैठे हैं। जिन हराम चीज़ों से परहेज़ करने लगे थे, उनमें पहले से भी कुछ ज़्यादा मुबतिला हो रहे हैं, और आम अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों तक से बेपरवाह होते जा रहे हैं। मैं आपसे बयान नहीं कर सकता कि इन हालात को देखकर मुझे कितना ज़्यादा दुख होता है।

हमें सोचना चाहिए कि इन सर्दमहरियों (निष्क्रियताओं), इन वादाख़िलाफ़ियों और इन वापसियों की वजह क्या है? मेरे नज़दीक पहली और बुनियादी ख़राबी यह है कि जिस क़ौम में काम करने के लिए हम उठे हैं, सदियों के लगातार पतन ने उसके अख़लाक़ की जड़ें कमज़ोर और खोखली कर दी हैं। उनमें किरदार (Character) की वह ताक़त बहुत कम बाक़ी रह गई है जिसकी मज़बूत चट्टान पर अटल फ़ैसले, मुस्तक़िल इरादे, पक्के वादे और भरोसे के क़ाबिल समझौते क़ायम होते हैं। उनमें एक लम्बे अरसे से यह कमज़ोरी पल रही है कि एक चीज़ को हक़ जानें और दिल से उसे हक़ मानें, मगर उसके लिए कोई क़ुरबानी देने को तैयार न हों — न वक़्त की, न माल की, न मन की ख़्वाहिशों की, न अपने पसंदीदा ख़याल और नज़रिए की, न अपने जाहिलियत के शौक़ और दिलचस्पियों की और न किसी और चीज़ की। उन्हें वह हक़परस्ती तो बहुत अपील करती है जिसमें हक़ को ज़बान से हक़ कहना और उसपर लफ़्ज़ी अक़ीदतों के फूल निछावर करना और उसके लिए कुछ नुमाइशी काम कर देना काफ़ी हो। और इसके बाद उन्हें उस हक़ के ख़िलाफ़ हर तरह अपने क़ारोबार, अपने इदारे और अपनी ज़िन्दगी के सारे मामलात चलाने की पूरी आज़ादी हो, इसीलिए वह कथित मज़हबियत के उन रास्तों की तरफ़ ख़ुशी-ख़ुशी लपक जाते हैं जिनकी दीनदारी और कोशिश और अमल का सारा दारोमदार इस्लाम और जाहिलियत के मेल-मिलाप (Compromise) पर है। लेकिन ऐसी हक़परस्ती उनके लिए एक न उठ सकने वाला बोझ है, जो कुफ़्र और इस्लाम, हक़ और बातिल और फ़रमाबरदारी और बग़ावत के बीच दो टूक फ़ैसला चाहती हो और जिसमें हर उस शख़्स से जो हक़ को मानने का इक़रार करे, पहली माँग यह हो कि वह यकसू हो जाए; और फिर यह माँग भी हो कि जिस चीज़ को उसने हक़ माना है उसके लिए अपनी पूरी शख़्सियत को तज दे और उम्र-भर के लिए तज दे। वक़्त की, माल की, मन की ख़्वाहिशों की, पसन्दों और दिलचस्पियों की, उमंगों और तमन्नाओं की, भरोसों और उम्मीदों की, गहरे से गहरे ताल्लुक़ात की, ताक़तों और क़ाबिलियतों की— यानि हर क़िस्म की क़ुरबानियाँ गवारा करे। और एक-दो दिन के लिए नहीं, चार-छः महीनों के लिए नहीं, किसी तय मुद्दत के लिए नहीं, बल्कि जब तक जीना है उस वक़्त तक गवारा करता रहे। आप इस गए-गुज़रे ज़माने में भी ऐसे मुसलमान बहुत पा सकते हैं जो ख़ुशी-ख़ुशी जान देने के लिए तैयार हो जाएँगे, सीनों पर गोलियाँ खा लेंगे, सिरों पर लाठियों की बारिश सह लेंगे, जेल की सख़्तियाँ सह लेंगे। ये सब उनके लिए

छोटे और हल्के काम हैं, जिन्हें ये आसानी से बर्दाश्त कर लेंगे। लेकिन अपनी पूरी ज़िन्दगी को एक ज़ाब्ते में कस देना, उम्र-भर एक मक़सद के पीछे सब्र से काम किए जाना, पूरी ज़िन्दगी अपनी ख़्वाहिशों पर एक ब्रेक (रोक) लगाए रखना, अपनी आदतों और ज़ेहनियतों को बदल डालना और किसी बाहरी दबाव के बिना अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों को क़बूल करना और निबाहना, यह हक़ीक़त में उनकी बर्दाश्त से बहुत ज़्यादा भारी बोझ है, जिसे सहना उनके लिए बहुत मुशकिल है। इस दिखावे के हंगामों में एक उम्र गुज़ार सकते हैं, मगर किसी ऐसे अहम वादे को साल-दो साल भी बहुत मुशकिल से निबाह सकते हैं जिसमें कुछ कुरबान करना पड़े। उनके इरादे कमज़ोर हो चुके हैं, उनके फ़ैसले की ताक़त ढीली पड़ गई है। उनमें आदतों और ख़्वाहिशों के कन्ट्रोल और यक़ीन और अमल की अनुकूलता और किसी निज़ाम की पाबन्दी में लगातार काम करने की ताक़त बाक़ी नहीं रही है। उनकी मिसाल उन जंगली घोड़ों की-सी है जो पैदा होने के दिन से ही आज़ाद घूमने का आदी रहा हो और किसी गाड़ी में जुतकर एक तयशुदा रास्ते पर सीधा चलने के लिए तैयार न हो। ऐसे घोड़े को अगर किसी तरह बस में करके अगर बाँध भी लिया जाए तो बहुत जल्द ही वह बंदिशों से उकताने लगता है, यहाँ तक कि एक दिन वह रस्सी तुड़ाकर ऐसा भागता है कि पहले से भी ज़्यादा दूर निकल जाता है।

दूसरी बुनियादी कमज़ोरी जिसे मैं रोज़-ब-रोज़ बहुत ज़्यादा महसूस करता जा रहा हूँ, यह है कि हमारे अवाम तो दीन और उसकी रूह की समझ से महरूम हैं ही, मगर हमारे बीच जो लोग मज़हबी रुझान रखनेवाले हैं, वे इस मामले में उनसे भी बढ़े हुए हैं। सच्चे और नेक-नियत लोगों तक का हाल यह है कि वे दीनदारी और फ़न्ने दीनदारी और पेश-ए-दीनदारी के फ़र्क़ को नहीं जानते। दीन की हक़ीक़ी क़द्रों को उन्होंने दूसरी कद्रों से बदल दिया है या गडमड कर लिया है। जो चीज़ें दीन में बहुत ज़रूरी हैं, बल्कि बुनियादी अहमियत रखती हैं, वे उनकी निगाह में, हमारी सारी कोशिशों के बावजूद, सिर्फ़ एक मामूली अहमियत हासिल कर सकी है, क्योंकि एक लम्बे अर्से की तालीम और नसीहत से उनके सोचने का अन्दाज़ कुछ ऐसा ही बना दिया गया है। इसके ख़िलाफ़ जो चीज़ें दीन में कोई अहमियत नहीं रखतीं या किसी क़द्र रखती भी हैं तो सिर्फ़ एक मामूली अहमियत, वही उनके नज़दीक दीन की धुरी है। क्योंकि फ़न्ने दीनदारी और पेश-ए-दीनदारी ने उनको यही मरतबा दिया है। आलिम हों या आम लोग या औसत दर्जे के लोग, बहरहाल उनके बीच कम ही ऐसे लोग पाए जाते हैं जो सही दीनी समझ की बिना पर जानते हों कि ख़ुदा के दीन में कौन-सी चीज़ें किस दर्जे में चाहिए, किस चीज़ पर कितना ज़ोर देना चाहिए और कौन-सी चीज़ किस चीज़ की ख़ातिर छोड़ी जा सकती है। यह इख़तिलाफ़ जो क़द्रों के सिलसिले में हमारे और आम मज़हबी ज़ेहन रखनेवाले लोगों

के बीच मौजूद है, मैं महसूस करता हूँ कि यह भी बहुत-सी सर्दमेहरियों और पीछे लौट जाने की वजह है। मगर हम मजबूर हैं कि दीन को ख़ूब जानकर और समझकर हमने 'इकामते दीन' का जो मक़सद अपने सामने रखा है उसके साथ हम बेवफ़ाई नहीं कर सकते और अगर लोगों में सरगर्मी पैदा करना या पलटनेवालों को पलटने से रोकना इसी पर मुनहसिर है कि दीनी क़द्रों के हक़ीक़ी तनासुब (अनुपात) को बदल दिया जाए, तो न हमें ऐसी सरगर्मी चाहिए और न पलटनेवाले की वापसी– चाहे वह कैसी ही अज़ीम शख़सियत क्यों न हो।

एक और उसूली वजह इन पलटने और ठंडेपन की यह है कि बहुत-से लोग जमाअत की रुकनियत (Membership) और आम अंजुमनों और पार्टियों की रुकनियत के फ़र्क़ को नहीं समझते। उन्होंने अभी पूरी तरह महसूस नहीं किया कि इस जमाअत में शिरकत क्या मानी रखती है। वे अभी तक इस गुमान में हैं कि यह भी कोई अन्जुमन (Committee) है जिसमें किसी ख़ास कशिश की बिना पर शामिल हो जाना और शामिल होकर दिलचस्पी न लेना और फिर किसी छोटी या बड़ी नापसन्दगी की बिना पर अलग हो जाना, आदमी के दीन और ईमान से कोई ताल्लुक़ नहीं रखता। हालाँकि सच्चाई यह है कि इस जमाअत की हैसियत आम अंजुमनों और पार्टियों की हैसियत से बिलकुल अलग है। यह जमाअत सिर्फ़ 'दीने हक़' के क़याम के लिए क़ायम हुई है। इसका मक़सद वही है जिसके लिए नबी (अलै०) दुनिया में भेजे गए। इसमें शामिल होते वक़्त हर आदमी से पूरे शऊर और एहसास के साथ वही अहद (Oath) लिया जाता है जिसे अल्लाह तआला ने अपनी किताब में बैअ (क्रय-विक्रय) बताया है।

इन्नल लाहश्तरा मिनल मु'अमिनी-न अनफ़ु-सहुम व अमवा लहुम बिअन-न ल-हुमुल जन्नह।

"हक़ीक़त यह है कि अल्लाह ने मोमिनों से उनके नफ़्स और उनके माल जन्नत के बदले ख़रीद लिए हैं।" — क़ुरआन, 9:111

ऐसी जमाअत में शामिल होने का जो आदमी इरादा करे, उसे पहले अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करके देख लेना चाहिए कि क्या हक़ीक़त में उसका यही ग़रज़ और यही मक़सद है, और यही काम उसके सामने है? अगर छान-बीन करने से पहले उसको इन बातों पर इतमीनान न हो तो सिरे से जमाअत में शामिल होना ही ग़लत है। लेकिन अगर उसे इतमीनान हो जाए कि वह यह यक़ीन रखते हुए जमाअत में शामिल हो कि उस जमाअत की ग़रज़ और मक़सद वही है जो उसके दस्तूर में बयान की गई है और इस यक़ीन की बिना पर वह अल्लाह से ख़ूब सोच-समझकर 'ख़रीद व फ़रोख़्त का मामला' करे तो इसके बाद आप ख़ुद समझ सकते हैं कि ऐसी शिरकत और ऐसे 'ख़रीद व फ़रोख़्त के मुआहदे' की यह हैसियत कभी नहीं

हो सकती कि एक कोट है जिसे जब चाहा पहना और जब चाहा उतार दिया। इधर क़दम बढ़ाने से पहले अपनी वापसी की कश्तियाँ जला दीजिए। यह समझते हुए आगे बढ़िए कि अब पलटकर जाने के लिए कोई जगह आपके लिए नहीं है। ख़ुदा से अहद करने के बाद जिस जान व माल को आप बेच चुके, अब आप उसे वापस नहीं ले सकते। इस मुआहदे के साथ ही आप सिर-धड़ की बाज़ी लगा चुके हैं। अब आपको जान लड़ाकर यह काम करना है, ख़ुद इस रास्ते पर चलना है और दूसरों को चलाना है। कोई ख़राबी पैदा होती नज़र आए तो भागने की फ़िक्र न कीजिए, बल्कि कम से कम इसी जोश के साथ उसे दूर करने की फ़िक्र कीजिए, जिस तरह आपके घर में आग लग जाए तो उसे बुझाने की फ़िक्र करेंगे। आगेवाला अगर न चले तो पीछे से सरक न जाइए, बल्कि उसे या तो चलने पर मजबूर कीजिए या उसे हटाकर फेंक दीजिए और ख़ुद आगे बढ़िए। यहाँ आकर अगर आप इस काम में दिलचस्पी न लेंगे या वक़्त, माल, मेहनत और दिल व दिमाग़ और जिस्म व जान की ताक़तें इस रास्ते में ख़र्च करने से जी चुराएँगे, या दूसरे कामों को इस काम पर तरजीह देंगे तो अपने अल्लाह से बेवफ़ाई करेंगे, आपका वादा किसी इनसान से नहीं, अल्लाह से है। शामिल होने के वक़्त जो वादा आपने किया है, उसके साथ ही आप अपना सब कुछ और ख़ुद अपने आपको अल्लाह के हाथ बेच चुके हैं। अब आपकी हर चीज़ पर पहला और सबसे बड़ा हक़ अल्लाह और उसके काम का है, बाक़ी सारी चीज़ें उसके बाद हैं।

ये सारी बातें मैं आपसे इसलिए कह रहा हूँ कि आप इस काम की अज़मत (क़द्रो क़ीमत) को अच्छी तरह महसूस कर लें, जो इस वक़्त हमारे सामने है। मुझसे अक्सर तक़ाज़े होते रहते हैं कि तुम जल्दी से कोई बड़ा क़दम उठाओ, लेकिन अभी मैंने जिन कमज़ोरियों का ज़िक्र आपके सामने किया है, उनको देखने और जानने के बावजूद अगर मैं कोई बड़ा क़दम उठा बैठूँ तो मुझसे बड़ा नादान कोई न होगा। सीरत (Character) और अख़लाक़ (Behaviour) की इन ख़ामियों और समझ-बूझ की इन कोताहियों के साथ दुनिया में कोई बड़ा काम नहीं किया जा सकता, जबकि वह काम जो दुनिया में सबसे बड़ा है। दुनिया के निज़ामे ज़िन्दगी में जो व्यापक इंक़िलाब पैदा करना हमारा मक़सद है, उसके लिए एक और ही क़िस्म की ज़ेहनियत और सीरत (Character) की ज़रूरत है, जिसे ढालने और तैयार करने का कोई इनतिज़ाम हमारे यहाँ एक ज़माने से नहीं हुआ है। जो साँचे हमारे यहाँ मुद्दतों से बने हुए हैं, वह अख़लाक़ व आदतों और ज़ेहनियतों और सीरतों को किसी और ढंग पर ढालते रहते हैं, जो इस काम के साथ कोई मेल नहीं रखता। इससे पहले कि हम अपने मक़सद की तरफ़ कोई बड़ा क़दम उठाएँ, हमें उन कमज़ोर ढाँचों को तोड़ना है और बहुत ही सब्र के साथ लगातार कोशिश और मेहनत से नई सीरतें, नई ज़ेहनियतें, नई आदतें और नई अख़लाक़ी ख़ासियतें पैदा करनी हैं।

जो सही मानों में नई नहीं, बल्कि सब की सब पुरानी हैं, मगर बदक़िस्मती से आज हमारे लिए नई हो गई हैं। ख़ूब समझ लीजिए कि बिगाड़ फैलानेवाले और भ्रष्टाचार में लिप्त किसी गिरोह को अल्लाह तआला उस वक़्त तक अपनी ज़मीन के इनतिज़ाम और अपनी दुनिया के लोगों की इमामत और पेशवाई के मंसब पर क़ाबिज़ नहीं होने देता जब तक दुनिया एक नेक और सुधारक गिरोह (फैले हुए लोग नहीं, बल्कि एक संगठित गिरोह) से बिलकुल ही ख़ाली न हो जाए। और इसी तरह अल्लाह तआला की सुन्नत के मुताबिक़ क़ियादत और रहनुमाई के मंसब और ज़मीन के इनतिज़ाम में कोई उसूली तबदीली भी उस वक़्त तक नहीं हो सकती जब तक एक उम्मे वस्त (उत्तम समुदाय), एक ख़ैर उम्मत वुजूद में न आ जाए, जो शुहदा-ए-अलन्नास (दुनिया के लोगों पर गवाही देनेवाले) होने के लायक़ हो, जिसका जीना और मरना सिर्फ़ अल्लाह और उसके दीन के लिए हो और अपनी अख़लाक़ी सिफ़तों के एतिबार से सारी दुनिया की उम्मतों पर बरतरी रखती हो।

इस मौक़े पर मैं एक बात बड़ी सफ़ाई के साथ कह देना चाहता हूँ। वह यह है कि इस क़िस्म की एक दावत का, जैसी कि हमारी यह दावत है, किसी मुसलमान क़ौम के अन्दर उठना उसको एक बड़ी कड़ी आज़माइश में डाल देता है। जब तक हक़ के कुछ बिखरे हुए हिस्से झूठ की मिलावट के साथ सामने आते हैं, एक मुसलमान क़ौम के लिए उनको क़बूल न करने और उनका साथ न देने का एक मुनासिब सबब मौजूद रहता है और उसका उज्र माना जाता रहता है, मगर जब पूरा हक़ बिलकुल खोलकर अपनी असली शक्ल में सामने रख दिया जाए और उसकी तरफ़ इस्लाम का दावा रखनेवाली क़ौम को दावत दी जाए तो उसके लिए लाज़िमी हो जाता है कि या तो उसका साथ दे और उस ख़िदमत को अन्जाम देने के लिए उठ खड़ी हो जो उम्मते मुसलिमा की पैदाइश की एक ही ग़रज़ है, या नहीं तो उसे रद्द करके वही पोज़ीशन इख़तियार कर ले, जो उससे पहले यहूदी क़ौम इख़तियार कर चुकी है। ऐसी सूरत में इन दो रास्तों के सिवा किसी तीसरे रास्ते की गुंजाइश उस क़ौम के लिए बाक़ी नहीं रहती। यह बिलकुल मुमकिन है कि इस दो टूक फ़ैसले में अल्लाह तआला अपनी मेहरबानी से मुसलमानों को ढील दे और इस तरह की एक के बाद दूसरी कई दावतों के उठने तक देखता रहे कि वे उनके साथ क्या बरताव इख़तियार करते हैं। लेकिन बहरहाल, इस दावत की तरफ़ से मुँह मोड़ने का अंजाम आख़िरकार वही है जो मैंने आपसे बयान कर दिया। ग़ैर मुसलिम क़ौमों का मामला इससे अलग है। लेकिन अगर मुसलमान सच से मुँह मोड़ें और अपने मक़सदे वुजूद की तरफ़ सही दावत को सुनकर उल्टे पाँव फिर जाएँ तो यह वह जुर्म है जिसपर ख़ुदा ने किसी नबी की उम्मत को माफ़ नहीं किया है।

अब चूँकि यह दावत हिन्दुस्तान में उठ चुकी है। इसलिए कम से कम हिन्दी मुसलमानों

के लिए तो आज़माइश का वह ख़ौफ़नाक पल आ ही गया है, रहे दूसरे देशों के मुसलमान, तो हम उन तक अपनी दावत पहुँचाने की तैयारी कर रहे हैं। अगर हमें इस कोशिश में कामयाबी मिल गई तो जहाँ-जहाँ यह पहुँचेगी, वहाँ के मुसलमान भी इस आज़माइश में पड़ जाएँगे। मैं यह दावा करने के लिए कोई बुनियाद नहीं रखता कि यह आख़िरी मौक़ा है, जो मुसलमानों को मिल रहा है। इसका इल्म सिर्फ़ अल्लाह को है। मुमकिन है कि अभी कुछ मौक़े मुसलमानों के नसीब में हों, लेकिन क़ुरआन की बुनियाद पर मैं इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि मुसलमानों के लिए यह वक़्त एक नाज़ुक वक़्त है। हिन्दुस्तानी मुसलमानों के सामने इस वक़्त सिर्फ़ दो तरह की दावतें हैं। एक तरफ़ हमारी यह दावत है जो मुसलमानों को ठीक उस काम के लिए बुला रही है जिसे अल्लाह तआला ने मुसलिम जमाअत की बुनियाद और तशकील की एक मात्र ग़रज़ क़रार दिया है और दूसरी तरफ़ वे दावतें हैं जिनके सामने मुसलमानों के दुनियावी फ़ायदे की ख़िदमत के सिवा और कुछ नहीं है। इन दो विभिन्न पुकारों में से दूसरी पुकार की तरफ़ मुसलमानों का फ़ौज दर फ़ौज लपकना और पहली पुकार को उम्मत की अज़ीम अकसरियत का बहरे कानों से सुनना, उम्मत के बड़े लोग (अकाबिर), उलेमा और मशाइख़ का इससे बेपरवाही बरतना या उसकी खुली या छिपी मुख़ालफ़त पर उतर आना और एक छोटे-से गिरोह का उसकी तरफ़ बढ़ना भी तो रुकते-झिझकते और आगे-पीछे करते हुए बढ़ना, मेरे नज़दीक एक बहुत बुरी बात है और एक बहुत बड़ा ख़तरा है। जिसमें यह मुसलमान क़ौम अपने आपको ढाल रही है। अच्छी तरह जान लीजिए कि अगर इस वक़्त इस क़ौम में से कुछ आदमी भी ऐसे न निकले जो उम्मते वस्त (बेहतरीन उम्मत) और शुहदाउल्लाह (अल्लाह के वास्ते गवाही देनेवाले) बनने के क़ाबिल हों और वह ख़िदमत अंजाम दे सकें, जिसके लिए अल्लाह तआला अपनी ज़मीन पर एक नेक और सुधारक गिरोह को बिलकुल तैयार देखना चाहता है, तो फिर—

> "कोई शक नहीं कि अल्लाह किसी दूसरी ऐसी क़ौम को ले आए जो अल्लाह को प्यारी हो और अल्लाह उसे प्यारा हो, जो ईमानवालों पर नर्म और कुफ़्रवालों पर सख़्त हो, जो अल्लाह के रास्ते में जिद्दोजुहद करे और किसी मलामत करनेवाले की मलामत से न डरे। यह अल्लाह का फ़ज़्ल है, जिसे अल्लाह अता करता है, जिसको चाहता है। अल्लाह बड़ी समाई रखनेवाला और सब कुछ जाननेवाला है।" — क़ुरआन, 5:54

आप लोग यह बात अच्छी तरह समझ लें कि आप ही असल में उम्मते वस्त (बेहतरीन उम्मत) बनने के उम्मीदवार हैं। आपका मक़सद यह है कि इस ऊँचे मक़ाम को हासिल करें। इतने बड़े मंसब (Post) की उम्मीदवारी के लिए उठ खड़े होना, फिर न उसकी अज़मत (बड़ाई) को महसूस करना और न उसके लिए अपने आपको तैयार करना, एक बहुत बड़ी बेख़बरी है।

और उससे भी बढ़कर बेख़बरी यह है कि एक तरफ़ तो आपने अपने अन्दर कम से कम उन सिफ़ात को अभी तक पैदा न किया हो जो इस बड़े काम के लिए ज़रूरी हैं और दूसरी तरफ़ आप तक़ाज़ा करें कि तुरन्त ही कोई बड़ा क़दम उठा दिया जाए। क्या आप इतना नहीं समझते और इससे डरते नहीं कि अगर आपने कोई ऐसा क़दम उठाया जिसके लिए ज़रूरी क़ाबिलियत आपने अपने अन्दर पैदा नहीं की है तो आप मुँह की खाकर पस्पा होंगे और इस रास्ते में पीछे हटना मैदाने जंग से भागना है, जो ख़ुदा की शरीअत में बहुत बड़ा गुनाह है।

अब मैं मुख़्तसर तौर पर आपको बताऊँगा कि वह कम से कम ख़ूबियाँ क्या हैं जो इस दावत के लिए काम करनेवालों में होनी चाहिएँ। यह ख़ूबियाँ तीन क़िस्मों में बँटती हैं। एक वह जो शख़्सी हैसियत से अलग-अलग तौर पर होनी चाहिए। दूसरी वे जो एक नेक और बेहतर जमाअत बनाने के लिए ज़रूरी हैं, और तीसरी वे जो अल्लाह की राह में जिद्दोजुहद के लिए ज़रूरी हैं।

शख़्सी ख़ूबियों में पहली और बुनियादी ख़ूबी यह है कि हममें से हर आदमी अपने नफ़्स से लड़कर पहले उसे मुसलमान और अल्लाह का फ़रमाबरदार बनाए। यह वही बात है जिसे हदीस में यूँ बयान किया गया है—

> ''सच्चा मुजाहिद (जिहाद करनेवाला) वह है जो अल्लाह की फ़रमाबरदारी में अपने नफ़्स से लड़े।''

यानी इससे पहले कि आप बाहर की दुनिया में ख़ुदा के बाग़ियों से मुक़ाबले के लिए निकलें, उस बाग़ी को फ़रमाबरदार बनाइए जो ख़ुद आपके अन्दर मौजूद है और ख़ुदा के क़ानून और उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ चलने के लिए हर वक़्त तक़ाज़ा करता रहता है। अगर यह बाग़ी आपके अन्दर पल रहा है और आपपर इतना क़ाबू रखता है कि आपसे अल्लाह की मरज़ी के ख़िलाफ़ अपनी बात मनवा सकता है तो यह बिलकुल बेमानी बात है कि आप बाहरी बाग़ियों के ख़िलाफ़ जंग का एलान करें। यह तो वही बात हुई कि घर में शराब की बोतल पड़ी है और बाहर शराबियों से लड़ाई हो रही है। यह तज़ाद (विरोधाभास) हमारी तहरीक को तबाह करनेवाला है। पहले ख़ुद ख़ुदा के आगे सिर झुकाइए, फिर दूसरों से फ़रमाबरदारी का मुतालबा कीजिए।

जिहाद के बाद दूसरा नम्बर हिजरत का है। हिजरत का असल मक़सद घर-बार छोड़ना नहीं है, बल्कि ख़ुदा की नाफ़रमानी से भागकर ख़ुदा की फ़रमाबरदारी की तरफ़ बढ़ना है। असल मुहाजिर वतन को अगर छोड़ता है तो इसलिए कि उसके वतन में अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारने के मौक़े नहीं हैं, लेकिन अगर किसी आदमी ने अपना घरबार छोड़ा और अल्लाह की फ़रमाबरदारी इख़तियार न की तो उसने बेवक़ूफ़ी की। यह सच्चाई भी हदीस

में अच्छी तरह बयान कर दी गई है। मिसाल के लिए एक हदीस को लीजिए। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा गया—

"ऐ अल्लाह के रसूल! कौन-सी हिजरत अफ़ज़ल है?"

जवाब मिला— "यह कि तू उन चीज़ों को छोड़ दे, जो अल्लाह को नापसन्द हैं।"

अन्दर का बाग़ी अगर फ़रमाबरदार न हो तो आदमी का वतन छोड़ देना ख़ुदा की नज़र में कोई वज़न नहीं रखता। इसी लिए मैं यह चाहता हूँ कि आप हज़रात बाहर की ताक़तों से पहले अपने अन्दर की सरकश ताक़तों से लड़िए और इसतिलाही कुफ़्फ़ार को मुसलमान बनाने से पहले अपने नफ़्स को मुसलमान बनाइए। इस मानी को कम लफ़्ज़ों में यूँ बयान किया जा सकता है कि हदीसे नबवी के मुताबिक़ अपने आपको उस घोड़े की तरह बनाइए जो एक खूँटे से बँधा हुआ है और चाहे कितना ही घूमे-फिरे, उस हद से आगे नहीं जा सकता जहाँ तक रस्सी उसे जाने देती है।

ऐसे घोड़े की हालत आज़ाद घोड़े से बिलकुल अलग होती है जो हर मैदान में घूमता है, हर खेत में घुस जाता है और जहाँ हरी घास देखता है, वहीं पूरी बेसब्री के साथ टूट पड़ता है।

इसलिए आप आज़ाद घोड़े की-सी हालत अपने अन्दर से निकालें और खूँटे से बँधे हुए घोड़े की-सी हालत अपने अन्दर पैदा करें।

इस हालत को पैदा करने के साथ दूसरा क़दम यह उठाइए कि अपने क़रीबी माहौल से, जिसे मैं Home Front कहूँगा, लड़ना शुरू कर दीजिए। घर के लोग, रिश्तेदार, दोस्त और सोसायटी जिससे आपका गहरा ताल्लुक़ है, इन सबसे एक अमली कशमकश शुरू हो जानी चाहिए। कशमकश इस मानी में नहीं कि आप अपने ताल्लुक़ रखनेवालों से कुश्ती लड़ें या उनसे तू-तू मैं-मैं और बहस शुरू कर दें, बल्कि यह कशमकश इस मानी में होनी चाहिए कि आप एक फ़र्द और जमाअत की हैसियत से अपने मक़सद के इतने आशिक़ और अपने उसूल और ज़ाबते के इतने पाबन्द हो जाएँ कि आस-पास जो लोग किसी मक़सद के बग़ैर बेउसूल ज़िन्दगियाँ गुज़ार रहे हैं, वे आपकी उसूल की पाबन्द ज़िन्दगी को गवारा न कर सकें। आपकी बीवियाँ, आपकी औलादें, आपके माँ-बाप, आपके रिश्तेदार और दोस्त आपके रवैये के ख़िलाफ़ उठ खड़े होने पर मजबूर हो जाएँ। आप अपने शहर में अजनबी होकर रह जाएँ, जहाँ आप रोज़ी हासिल करने के लिए काम करते हैं, वहाँ आपका वुजूद साफ़ तौर पर खटकने लगे, दफ़तर की आराम कुर्सी, जिस पर बैठकर इज़्ज़त और तरक़्क़ी के ख़्वाब देखे जाते हैं,आपके लिए अंगारों की अंगीठी बनकर रह जाए। ग़रज़ जो जितना ज़्यादा क़रीबी हो, उससे उतना ही पहले टकराव शुरू हो जाना चाहिए। जिस आदमी के घर में जिहाद का मैदान मौजूद

हो, वह आखिर कुछ मील की दूरी ही पर क्यों लड़ने जाए, पहला मारका तो घर ही से शुरू होना चाहिए। अब तक जहाँ-जहाँ से इस कशमकश की ख़बरें आ रही हैं, वहाँ के लोगों से मैं मुतमइन हो रहा हूँ और जहाँ से ऐसी ख़बरें नहीं आ रही हैं, वहाँ के लिए बेताबी से इनतिज़ार कर रहा हूँ कि ऐसी कोई ख़बर मिले।

मगर मैं इस वक़्त यह भी वाज़ेह कर दूँ कि यह सारी कशमकश उस ज़ेहनियत और स्प्रिट के साथ होनी चाहिए जिसके साथ एक डॉक्टर बीमारों से कशमकश करता है। असल में वह बीमार से नहीं लड़ता, बल्कि बीमारी से लड़ता है और उसकी सारी कोशिश हमदर्दी की रूह से भरी हुई होती है। वह अगर बीमार को कड़वी दवाएँ पिलाता है या उसके जिस्म के किसी हिस्से का आपरेशन करता है तो यह पूरी तरह इख़लास और उसके प्रति हमदर्दी ही होती है, दुशमनी नहीं होती है। उसकी नफ़रत और उसका ग़ुस्सा पूरी तरह से मर्ज़ के ख़िलाफ़ होता है, न कि मरीज़ के खिलाफ़ — बिलकुल इसी तरह अपने एक गुमराह भाई को हिदायत की तरफ़ लाइए। वह कभी किसी बात से यह महसूस न करे कि उसे नीची नज़र या नफ़रत से देखा जा रहा है या सीधे उसकी ज़ात से दुश्मनी की जा रही है, बल्कि वह आपके अन्दर इनसानी हमदर्दी, मुहब्बत और भाईचारे का काम करता हुआ पाए। मैंने दरभंगा के इजतिमा के मौक़े पर भी यह कहा था कि असली तबलीग़ तक़रीरों और तहरीरी मुनाज़िरों से नहीं हुआ करती, यह काम करने के बहुत ही मामूली तरीक़े हैं। असल तबलीग़ यह है कि आप अपनी दावत का सरापा ज़ुहूर और नमूना हों। जहाँ कहीं लोगों की निगाहों के सामने से यह नमूने गुज़र जाएँ, वे आपके तर्ज़े अमल से पहचान लें कि ये हैं अल्लाह के राह के राही। जिस तरह कोई 'कांग्रेसी' आदमी सामने आता है तो कांग्रेसियत की पूरी तस्वीर आँखों के सामने फिर जाती है, उसी तरह आप ऐसे इस्लाम में डूब जाइए कि जहाँ भी आप सामने आएँ, इस्लामी तहरीक का पूरा नक़्शा सामने आ जाए। यही वह चीज़ है जिसे नबी करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि "उन्हें देखकर ख़ुदा याद आ जाए।"

मैं यह नहीं कहता कि ऐसा फ़ौरन हो जाना चाहिए। यह मक़ाम तो धीरे-धीरे ही हासिल होगा। ख़ुदा की राह में जब अपने माहौल से बराबर आपका टकराव होता रहेगा और आप हर आन, हर पल अपने मक़सद के लिए कोशिश करते हुए क़ुरबानियाँ देते रहेंगे तो एक मुद्दत में जाकर आपपर फ़नाईयत की कैफ़ियत तारी होगी और आप अपनी दावत का जीता जागता नमूना बन सकेंगे। इस मक़सद के लिए क़ुरआन और हदीस का ख़ूब गहरी नज़र से बार-बार मुताला कीजिए और देखिए कि इस्लाम किस तरह का इनसान चाहता है और नबी (सल्ल०) किस क़िस्म के आदमी तैयार करते थे, वह कौन सी ख़ूबियाँ थीं, जो इस तहरीक के कारकुनों में पहले पैदा की गईं और उसके बाद जिहाद का अलम (झण्डा) बुलन्द किया गया।

आपमें से हर आदमी जानता है कि दुनिया के सबसे बड़े मुज़क्की (तरबियत करनेवाले, समाज सुधारक) यानी नबी (सल्ल०) ने जो इनसान तैयार किए थे उन्हें पन्द्रह साल की तैयारी के बाद मैदान में लाया गया। इस तैयारी की तफ़सील मालूम कीजिए और देखिए कि यह किस तदरीज और क्रम के साथ हुई थी, इसमें किन ख़ूबियों की पैरवी पहले थी और किन की बाद में, कौन-सी ख़ूबी किस दर्जे में चाहिए थी और उन्हें किस हद तक तरक़्क़ी दी गई, और किस मक़ाम पर पहुँचकर उस जमाअत से अल्लाह तआला ने फ़रमाया था कि अब तुम दुनिया के बेहतरीन गिरोह बन गए हो और इस क़ाबिल हो गए हो कि इनसानों की इस्लाह के लिए निकलो। यही नमूना ख़ुद अपनी तैयारी के लिए भी आपके सामने होना चाहिए।

यहाँ तफ़सील का मौक़ा नहीं है। मैं सिर्फ़ दो हदीसें आपकी रहनुमाई के लिए पेश करूँगा, जिनसे आपको मालूम होगा कि इस काम के लिए किन ख़ूबियों के आदमी दरकार हैं। नबी (सल्ल०) फ़रमाते हैं—

''जिसने अल्लाह के लिए मुहब्बत की और अल्लाह ही के लिए नफ़रत की, अल्लाह के लिए दिया और अल्लाह ही के लिए रोका, उसका ईमान मुकम्मल हो गया।''

यानी आदमी पूरा मोमिन उस वक़्त बनता है जब उसकी हालत यह हो जाए कि उसकी दोस्ती और दुश्मनी और उसका देना और रोकना, जो कुछ हो, सिर्फ़ अल्लाह के लिए हो, नफ़सानी और दुनियावी ग़रज़ उसके लिए ख़त्म हो जाएँ।

दूसरी हदीस में यह है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

''मेरे रब ने मुझे नौ चीज़ों का हुक्म दिया है—

1. खुले और छिपे हर हाल में ख़ुदा से डरता रहूँ।
२. किसी पर मेहरबान हूँ या किसी के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा में हूँ, दोनों हालतों में इनसाफ़ ही की बात कहूँ।
3. चाहे फ़क़ीरी की हालत में हूँ या अमीरी की हालत में, हर हाल में सीधा और सन्तुलित तरीक़ा अपनाएँ।
4. और यह कि जो मुझसे कटे, मैं उससे जुड़ूँ।
5. और जो मुझे न दे, मैं उसे दूँ।
6. और जो मुझपर ज़्यादती और ज़ुल्म करे, मैं उसे माफ़ कर दूँ।
7. और यह कि मेरी ख़ामोशी ग़ौर और फ़िक्र की ख़ामोशी हो।
8. और मेरी गुफ़्तगू ज़िक्रे इलाहीवाली गुफ़्तगू हो।
9. और मेरी निगाह इबरत की निगाह हो।

इन ख़ूबियों के ज़िक्र के बाद नबी (सल्ल०) फ़रमाते हैं कि मुझे हुक्म दिया गया कि मैं

नेकी का हुक्म दूँ और बुराई से रोकूँ।"

मालूम हुआ कि नेकी को फैलाने और बुराई को ख़त्म करने के लिए जो उम्मते वस्त (बेहतरीन गिरोह) उठे, उसके एक-एक आदमी में ये ख़ूबियाँ होनी चाहिएँ। इन्हीं ख़ूबियों के साथ यह फ़रीज़ा अदा हो सकता है। ये न हो तो हम कभी अपने मनसब के तक़ाज़ों को पूरा नहीं कर सकते।

यह तो आदमी के इस्लाह (सुधार) का प्रोग्राम हुआ। इसके आगे जमाअती हैसियत से कुछ दूसरी अख़लाक़ी ख़ूबियों की ज़रूरत है। जमाअती नज़्म को मज़बूत और कारगर बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि जमाअत के अरकान के बीच मुहब्बत और हमदर्दी हो, एक-दूसरे के बारे में अच्छा गुमान हो, बेएतिमादी की जगह एतिमाद हो, आपस में मिलकर काम करने की सलाहियत हो, एक दूसरे को हक़ की नसीहत करने की आदत हो, ख़ुद आगे बढ़ें और दूसरों को अपने साथ आगे बढ़ाएँ— ये ख़ूबियाँ हर जमाअती नज़्म के लिए लाज़मी हैं। वरना अगर अलग-अलग सब लोग ऊँचे दर्जे की ख़ूबियाँ अपने अन्दर पैदा कर लें, लेकिन वे मुनज़्ज़म और बाहम जुड़े न हों, आपस में एक दूसरे के मददगार न हों, कंधे से कंधा मिलाकर चल न सकें तो हम दुनिया में बातिल (झूठ) के अलमबरदारों का बाल तक बीका नहीं कर सकते। यह कहना ग़लत न होगा कि शख़्सी हैसियत से बेहतरीन इनसान हममें हमेशा मौजूद रहे हैं और आज भी मौजूद हैं, और अगर आज दुनियाभर को चैलेंज देकर कहें कि ऐसे लोग किसी के पास न होंगे तो शायद इस चैलेंज का जवाब किसी से न दिया जा सकेगा। मगर यह मामला सिर्फ़ व्यक्तिगत इस्लाह तक है। जिन लोगों ने अपनी व्यक्तिगत इस्लाह में कमाल हासिल किया है, उन्होंने ज़्यादा से ज़्यादा यह किया कि कुछ सौ या कुछ हज़ार इनसानों तक अपना असर फैला दिया और बुज़ुर्गी की कुछ यादगारें छोड़कर चले गए। यह तरीक़ा बड़े काम करने का नहीं है। बड़े से बड़ा पहलवान जो भारी बोझ उठाने और कई-कई आदमियों को कुश्ती में पछाड़ने की ताक़त रखता हो, एक मज़बूत रेजीमेंट के मुकाबले में बेकार है। इसी तरह अगर हममें से कुछ लोग व्यक्तिगत इस्लाह और तरबियत की सभी मंज़िलें तय किए हुए हों, लेकिन इनमें इजतिमाई राबिता और सहयोग न हो तो इनकी हैसियत उसी पहलवान की-सी है जो किसी रेजिमेंट का हिस्सा बनकर काम नहीं करता, बल्कि अकेले ही एक रेजिमेंट को मुक़ाबला करने की दावत देता है। इनफ़िरादी तज़किए के लिहाज़ से हमारी अपनी जमाअत में भी ऐसे साथियों की कमी नहीं है जिनकी हालत पर ख़ुद मुझे रश्क आता है। लेकिन जहाँ तक जमाअती तज़किए का ताल्लुक़ है, हालात अफ़सोसनाक हैं। मैं जल्द ही इस मसले पर तफ़सील से लिखने का इरादा रखता हूँ कि जमाअती हैसियत से क्या कुछ छोड़ने के क़ाबिल है और इसकी जगह क्या-क्या चीज़ें अपनाना ज़रूरी हैं।

कुरआन में इस मसले पर उसूली हद तक तफ़सील के साथ रौशनी डाली गई है और हदीस में उसूल की तशरीह मौजूद हैं। फिर नबी (सल्ल०) की सीरत और सहाबा (रज़ि०) की सीरत के मुताला से मतलूबा इजतिमाई अख़लाक़ के अमली नमूने भी देखे जा सकते हैं। इनको पढ़िए और नाप-तौलकर देखिए कि किसी पहलू से हमारे इजतिमाई नज़्म में क्या और कितनी कमी है और इस कमी को पूरा करने की कोशिश कीजिए।

साफ़ बात है कि इजतिमाई नज़्म में एक आदमी को दूसरे आदमियों से लाज़मी तौर पर साबिक़ा पेश आता है। अगर अच्छा गुमान, हमदर्दी, ईसार व कुरबानी और रवादारी न हो तो लोगों के मिज़ाजों का इख़तिलाफ़ सहयोग और तआवुन को एक दिन भी जारी नहीं रहने देगा। जमाअती नज़्म चलता ही इसी उसूल पर है कि दूसरों के लिए आप अपना कुछ छोड़ें और दूसरे आपके लिए कुछ छोड़ें। इस ईसार और कुरबानी की हिम्मत न हो तो किसी इंक़िलाब का नाम भी ज़बान पर न लाना चाहिए।

तीसरी क़िस्म की ख़ूबियाँ वे हैं जो अल्लाह की राह में जिद्दोजुहद करने की ज़रूरी शर्तों में गिनी जाती हैं। इनका भी कुरआन और हदीस में तफ़सील के साथ बयान मौजूद है। सिर्फ़ बयान ही नहीं, बल्कि एक-एक मतलूबा ख़ूबी की वज़ाहत की गई है कि वह किस क़िस्म और किस दर्जे की होनी चाहिए। इस सिलसिले में अहकाम और हिदायतों को जमा कीजिए और समझिए कि अल्लाह की राह में जिद्दोजुहद के लिए क्या-क्या तैयारियाँ करनी हैं। मैं मुख़्तसर तौर पर उनकी तरफ़ भी इशारा कर देना चाहता हूँ।

सबसे पहली ख़ूबी जिसपर ज़ोर दिया गया है, सब्र है। सब्र के बिना ख़ुदा की राह में क्या, किसी राह में भी जिद्दोजुहद नहीं की जा सकती। फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि ख़ुदा के रास्ते में और क़िस्म का सब्र चाहिए और दुनिया के लिए जिद्दोजुहद करते हुए दूसरे क़िस्म के सब्र की ज़रूरत है। मगर हर हाल में सब्र ज़रूरी है। सब्र के बहुत-से पहलू हैं। एक पहलू यह है कि जल्दबाज़ी से बहुत ज़्यादा बचा जाए। दूसरा पहलू यह है कि किसी राह में जिद्दोजुहद करते हुए परेशानियों और रुकावटों के मुक़ाबले में इसतिक़ामत (मज़बूती) दिखाई जाए और क़दम पीछे न हटाया जाए। तीसरा पहलू यह है कि कोशिशों का कोई नतीजा (Result) अगर जल्दी हासिल न हो तब भी हिम्मत न हारी जाए और बराबर कोशिश जारी रखी जाए। एक और पहलू यह है कि मक़सद की राह में बड़े से बड़े ख़तरे, नुक़सान, डर और लालच के मौक़े भी पेश आ जाएँ तो क़दम लड़खड़ाने न पाए और यह भी सब्र ही का एक पहलू है कि जज़्बात भड़कने के सख़्त से सख़्त मौक़ों पर भी आदमी अपने दिमाग़ का संतुलन (Balance) न खोए और जज़्बात से मजबूर होकर कोई क़दम न उठाए। हमेशा शान्ति, सुकून, अक़्ल की सेहत, ठन्डे दिल और ठण्डी निर्णय-शक्ति के साथ काम करे। फिर हुक्म सिर्फ़ सब्र ही का नहीं है,

बल्कि डटकर सब्र करने का भी है। यानी मुख़ालिफ़ ताक़तें अपने बातिल मक़सदों के लिए जिस सब्र के साथ डटकर कोशिश कर रही हैं, उसी सब्र के साथ आप भी डटकर उनका मुक़ाबला करें। इसी लिए 'इसबिरू' (सब्र करो) के साथ 'साबिरू' (डटकर और जमकर मुक़ाबले में मज़बूत रहो) का भी हुक्म दिया गया है। जिन लोगों के मुक़ाबले में आप हक़ की अलमबरदारी के लिए उठने का हौसला रखते हैं, उनके सब्र को अपने सब्र से तौलिए और सोचिए कि उनका सब्र कितना है और आपका सब्र कितना है। शायद हम उनके मुक़ाबले में दस प्रतिशत (10%) का दावा करने के क़ाबिल भी नहीं है। बातिल (असत्य) के ग़लबा के लिए जो सब्र वे दिखा रहे हैं उसका अन्दाज़ा करने के लिए मौजूदा लड़ाई के हालात पर नज़र डालिए। किस तरह वक़्त आ पड़ने पर उन लोगों ने अपने उन कारख़ानों, शहरों और रेलवे स्टेशनों को अपने हाथों से जला डाला, जिनकी तैयारी और तामीर में सालों की मेहनतें और बेशुमार रुपये ख़र्च किए गए थे। ये उन टैंकों के सामने सीना तानकर खड़े हो जाते हैं जो फ़ौजों को अपने भारी पहियों के तले कुचल डालते हैं। ये दुश्मन के उन बम बरसानेवाले जहाज़ों के साए में मज़बूती के साथ जमकर खड़े रहते हैं जो मौत के पर लगाकर उड़ते हैं। जब तक उनके मुक़ाबले में हमारा सब्र 105 प्रतिशत पर न पहुँच जाए, उनसे कोई टक्कर लेने की हिम्मत नहीं की जा सकती। जब सरो सामानी के लिहाज़ से हम उनके सामने कोई हैसियत नहीं रखते तो फिर सरो सामान की कमी को सब्र ही से पूरा किया जा सकता है।

दूसरी चीज़ जो जिद्दोजुहद के लिए ज़रूरी है, वह ईसार और क़ुरबानी की सिफ़त है। वक़्त की क़ुरबानी, मेहनतों की क़ुरबानी और माल की क़ुरबानी— यानी क़ुरबानी के एतिबार से बातिल का झण्डा उठानेवाली ताक़तों के मुक़ाबिले में हम बहुत ही पीछे हैं। हालाँकि बेसरो सामानी की कमी को दूर करने के लिए हमें ईसार और क़ुरबानी में भी उनसे मीलों आगे होना चाहिए। मगर यहाँ हाल यह है कि एक आदमी बीस, पच्चीस, सौ और हज़ार रुपये महीने की तनख़्वाह के बदले अपनी पूरी सलाहियतें ख़ुद अपने दुश्मन के हाथ बेच देता है और इस तरह हमारी क़ौम का काम आनेवाला ज़ौहर बेकार हो जाता है। यह दिमाग़ी सलाहियतें रखनेवाला गिरोह इतनी हिम्मत नहीं रखता कि एक बड़ी आमदनी को छोड़कर यहाँ सिर्फ़ ज़रूरतभर के लिए थोड़े-से मुआवज़े के बदले अपनी ख़िदमतें पेश कर दे। फिर बताइए कि अगर ये लोग इतनी क़ुरबानी भी नहीं करेंगे और इस रास्ते में पित्ता मारकर काम नहीं करेंगे तो फिर इस्लामी तहरीक कैसे फल-फूल सकती है। ज़ाहिर बात है कि कोई तहरीक (आन्दोलन) वालेंटियरों (Volentiers) के बल पर नहीं चल सकती। जमाअती नज़्म (व्यवस्था) में वालेंटियरों को उसी दर्जे की अहमियत हासिल है जैसे एक आदमी के जिसमानी निज़ाम (Body System) में हाथ और पैर को है। ये हाथ, पैर और दूसरे अंग किस काम के हो सकते

हैं, अगर उनसे काम लेने के लिए धड़कनेवाले दिल और सोचनेवाले दिमाग़ मौजूद न हों। दूसरे लफ़्ज़ों में हमें वालेंटियरों से काम लेने के लिए आला दर्जे (उच्च कोटि) के जेनरल (General) चाहिए। मगर मुसीबत यह है कि जिनके पास दिल और दिमाग़ की कुव्वतें हैं, वे दुनिया की तरक़्क़ियों के आशिक़ हैं और बाज़ार में उसी की तरफ़ जाते हैं जो ज़्यादा क़ीमत पेश करे। हमारी क़ौम के बेहतरीन लोग भी अपने असली मक़सद से इस तरह नहीं जुड़े हैं कि वह इसकी ख़ातिर अपने फ़ायदों को बल्कि फ़ायदे की उम्मीदों तक को कुरबान कर सकें। इस ईसार और कुरबानी को लेकर अगर आप यह उम्मीद करें कि दुनिया में बिगाड़ और फ़साद फैलानेवाले वे लोग जो रोज़ाना करोड़ों रुपये और लाखों जानों की कुरबानी कर रहे हैं, हमसे कभी शिकस्त खा सकते हैं, तो यह छोटा मुँह बड़ी बात है।

अल्लाह की राह में जिद्दोजुहद के लिए तीसरी ख़ूबी दिल की लगन है। सिर्फ़ दिमाग़ी तौर पर ही किसी शख़्स का उस तहरीक (आन्दोलन) को समझ लेना और उसपर सिर्फ़ अक़्ली तौर पर मुतमइन होना, यह उस राह में क़दम बढ़ाने के लिए सिर्फ़ एक पहला क़दम है, लेकिन इतने से असर से काम चल नहीं सकता। यहाँ तो इसकी ज़रूरत है कि दिल में एक आग भड़क उठे, ज़्यादा नहीं तो कम से कम इतनी आग तो भड़क जानी चाहिए, जितनी अपने बच्चे को बीमार देखकर होती है और आपको खींचकर डॉक्टर के पास ले जाती है, या इतनी जितनी अपने बच्चे को बीमार देखकर हो जाती है और आदमी को दौड़-भाग पर मजबूर कर देती है और चैन से बैठने नहीं देती। सीनों में वह जज़्बा होना चाहिए जो हर वक़्त आपको अपने लक्ष्य (नस्बुलऐन) के धुन में लगाए रखे, दिल-दिमाग़ को यक्सू कर दे और आपकी तवज्जोह और ध्यान को उस काम पर मरकूज़ (केंद्रित) कर दे कि अगर निजी या घरेलू या दूसरे ग़ैर मुतल्लिक़ मामलात कभी आपकी तवज्जोह को अपनी तरफ़ खींचे भी तो आप बड़ी नागवारी के साथ उनकी तरफ़ खिंचें। कोशिश कीजिए कि अपनी ज़ात के लिए कुव्वत और वक़्त का कम से कम हिस्सा इस्तेमाल करें और आपकी ज़्यादा से ज़्यादा कोशिश अपने जीवन उद्देश्य के लिए हो। जब तक यह दिल की लगन न होगी और पूरी तरह अपने आपको इस काम में झोंक न देंगे, सिर्फ़ ज़बानी जमा ख़र्च से कुछ न बनेगा। ज़्यादातर लोग दिमाग़ी तौर पर हमारा साथ देने के लिए तैयार हो जाते हैं, लेकिन कम लोग ऐसे मिलते हैं जो दिल की लगन के साथ तन-मन-धन से इस काम में शामिल हों। मेरे एक क़रीबी दोस्त ने, जिनसे मेरे ज़ाती और जमाअती ताल्लुक़ात बहुत गहरे हैं, हाल ही में दो साल की दोस्ती के बाद मुझसे यह क़बूल किया कि अब तक मैं सिर्फ़ दिमाग़ी इतमीनान की बिना पर जमाअत में शरीक था, मगर अब यह चीज़ दिल में उतर गई है और उसने रूह के छिपे हुए घर पर क़बज़ा जमा लिया है। मैं चाहता हूँ कि हर आदमी इसी तरह अपना जायज़ा लेकर और अपने ऊपर तनक़ीद करके देखे

कि क्या अभी तक वह इस जमाअत का सिर्फ़ एक दिमाग़ी रुक्न है या उसके दिल में मक़सद से इश्क़ की आंग भड़क उठी है। फिर अगर दिल की लगन अपने अन्दर न महसूस हो तो उसे पैदा करने की फ़िक्र की जाए। जहाँ दिल की लगन होती है, वहाँ किसी ठेलने और उकसानेवाले की ज़रूरत नहीं रहती। इस कुव्वत के होते हुए यह सूरते हाल कभी पैदा नहीं हो सकती कि अगर कहीं जमाअत का एक कारकुन (कार्यकर्ता) पीछे हट गया या जगह छोड़कर कहीं चला गया तो वहाँ का सारा काम ही चौपट हो गया। बख़िलाफ़ इसके फिर तो हर आदमी उसी तरह काम करेगा, जिस तरह वह अपने बच्चे को बीमार पाकर किया करता है।

ख़ुदा न करे, अगर आपका बच्चा बीमार हो तो आप उसकी ज़िन्दगी और मौत के सवाल को पूरे तौर पर किसी दूसरे पर हरगिज़ नहीं छोड़ सकते। मुमकिन नहीं कि आप यह बहाना करके उसे उसके हाल पर छोड़ दें कि कोई तीमारदार नहीं, कोई दवा लानेवाला नहीं, कोई डॉक्टर के पास ले जानेवाला नहीं। अगर कोई न हो तो आप ख़ुद सब कुछ बनेंगे, क्योंकि बच्चा किसी दूसरे का नहीं, आपका अपना है। सौतेला बाप तो बच्चे को मरने के लिए छोड़ भी सकता है, मगर सगा बाप अपने जिगर के टुकड़े को कैसे छोड़ सकता है। उसके तो दिल में आग लगी होती है। इस तरह इस काम से भी अगर आपका दिली ताल्लुक़ हो तो उसको आप दूसरों पर नहीं छोड़ सकते और न यह मुमकिन है कि किसी दूसरे की नाअहली, ग़लतरवी या बेतवज्जोही को बहाना बनाकर आप उसे मर जाने दें और अपने दूसरे कामों में लग जाएँ। ये सब बातें इस बात का पता देती हैं कि ख़ुदा के दीन और उसकी इक़ामत व सरबुलन्दी के मक़सद से आपका रिश्ता सिर्फ़ एक सौतेला रिश्ता है, हक़ीक़ी रिश्ता हो तो आपमें से हर आदमी इस राह में अपनी जान लड़ाकर काम करे। मैं आपसे साफ़ कहता हूँ कि अगर आप इस राह में कम से कम इतने दिली लगाव के बग़ैर क़दम बढ़ाएँगे, जितना आप अपने बीवी-बच्चों से रखते हैं, तो अंजाम हार और शिकस्त के सिवा कुछ न होगा। और यह ऐसी बुरी हार होगी कि ज़माने तक हमारी नस्लें इस तहरीक (Movement) का नाम लेने की हिम्मत भी न कर सकेंगी। बड़े-बड़े प्रोग्रामों का नाम लेने से पहले अपनी दिली और अख़लाक़ी ताक़त का जाइज़ा लीजिए और अल्लाह की राह में जिद्दोजुहद के लिए जिस दिल-गुर्दे की ज़रूरत है, वह अपने अन्दर पैदा कीजिए।

चौथी ज़रूरी ख़ूबी इस राह के लिए यह है कि हमें बराबर जिद्दोजुहद और व्यवस्थित (Systematic) रूप से काम करने की आदत हो। एक लम्बे अर्से से हमारी क़ौम इस तरीक़े से काम करने की आदी रही है कि जो काम हो कम से कम वक़्त में हो जाए, जो क़दम उठाया जाए शोर-शराबा उसमें ज़रूर हो, चाहे महीने-दो महीने में सब किया-कराया बेकार होकर रह जाए। इस आदत को हमें बदलना होगा। इसकी जगह क्रमानुसार व्यवस्थित रूप से और किसी

शोर-शराबे के बिना काम करने की मश्क़ होनी चाहिए। छोटे से छोटा काम भी, जो बजाए ख़ुद ज़रूरी हो, अगर आपके हवाले कर दिया जाए तो बिना किसी नुमायाँ और जल्द नतीजे के, और बिना किसी वाहवाही के आप अपनी पूरी उम्र सब्र के साथ इसी काम में खपा दें। अल्लाह की राह में जिद्दोजुहद करने में हर वक़्त मैदान गर्म ही नहीं रहा करता है और न हर शख़्स पहली सफ़ में लड़ सकता है। एक वक़्त का मैदान जीतने के लिए कभी-कभी पच्चीस-पच्चीस साल तक लगातार ख़ामोश तैयारी करनी पड़ती है और पहली सफ़ में अगर हज़ारों आदमी लड़ते हैं तो उनके पीछे लाखों आदमी जंगी ज़रूरतों के उन छोटे-छोटे कामों में लगे रहते हैं जो देखने में बहुत मामूली होते हैं।

तक़रीर को ख़त्म करने से पहले मुख़्तसर तौर पर मैं इस बात की तशरीह कर देना भी ज़रूरी समझता हूँ कि अब हमारे सामने प्रोग्राम क्या है। मुझे शक है कि जिस प्रोग्राम पर मैं तहरीक को चला रहा हूँ, उसे समझा नहीं गया। सबसे पहला काम, जिसके लिए यह इजतिमा किए जा रहे हैं, यह है कि आपमें से एक-एक आदमी से मुझे वाक़फ़ियत हो जाए। मुझे अच्छी तरह मालूम होना चाहिए कि मेरे साथ किन-किन सिफ़तों के लोग चल रहे हैं, उनमें क्या-क्या सलाहियतें और क़ुव्वतें हैं और उनसे क्या-क्या काम लिया जा सकता है। आप हज़रात बिलकुल साफ़ तौर से मुझे बताइए कि किस मौक़े पर आप क्या-क्या ख़िदमतें अंजाम दे सकते हैं? जिस क़द्र जल्दी में यह मालूमात हासिल कर लूँगा, उसी क़द्र जल्दी काम का नक़्शा तैयार कर सकूँगा। क़ुव्वत के अंदाज़ा के बग़ैर कोई क़दम उठाना मेरे नज़दीक बेहतर नहीं है। इस मक़सद के लिए आप हज़रात बार-बार मरकज़ (Centre) में आते रहें, ख़त व किताबत से मुझे जानकारी देते रहें और जहाँ तक मुमकिन होगा, मैं ख़ुद भी इजतिमाओं में शामिल होकर आपसे इनफ़िरादी राबता को बढ़ाता रहूँगा। इसके बाद मैं एक मुकम्मल (Complete) नक़्शा तैयार करके सिलसिलेवार आगे बढ़ने की फ़िक्र करूँगा।

दूसरा ज़रूरी काम यह सामने है कि हमें लोगों की तरबियत के लिए एक ऐसी मशीनरी (Machinery) बनानी है जिसके ज़रिए से हम ज़रूरत के आदमी तैयार करें और अपने कारकुनों में ज़रूरी ख़ूबियाँ पैदा करें। कल जो तजवीज़ें पेश होनेवाली हैं, उनसे आपको मालूम हो जाएगा कि इस सिलसिले में हम बहुत जल्दी क़दम उठानेवाले हैं।

तीसरा काम जिस पर बहुत दिनों से रू-बरू और ख़त व किताबत के ज़रिए से भी मुझे बार-बार तवज्जोह दिलाई जा रही है और जिसकी शदीद अहमियत को मैं ख़ुद भी महसूस कर रहा हूँ— यह है कि नई नस्लों को अपने नज़रिये के मुताबिक़ तहरीक की ख़िदमत के लिए तैयार किया जाए। अब तक सरमाया और मुनासिब कारकुनों की कमी और जंग की पैदा की हुई मआशी (आर्थिक) मुश्किलें इस रास्ते की रुकावट बनी रही हैं। लेकिन शायद इस

सिलसिले में अब बहुत ज़्यादा देर नहीं होगी और जल्द ही आप सुनेंगे की मरकज़ में इस काम की बुनियाद डाल दी गई है। इसलिए मैं यह ख़ुशख़बरी भी सुना दूँ कि मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही इसी ग़रज़ के लिए यहाँ आए हैं और अजीब नहीं कि मुस्तक़िल तौर पर (Permanently) यहीं रह जाएँ।

चौथी चीज़ जिसके लिए हमें सिर जोड़कर सोचना है, यह है कि औरतों को अपने साथ ले चलने के लिए क्या सूरतें अपनाई जा सकती हैं। अब तक हमारा एक ही हाथ काम करता रहा है और गाड़ी का एक ही पहिया हरकत में आया है। अब हमें अपने दूसरे हाथ और अपनी गाड़ी के दूसरे पहिए की फ़िक्र करनी है। यह तो ज़ाहिर है कि हमारा और हमारी औरतों का साथ, चोली दामन का साथ है और वे हमसे और हम उनसे हर पल मुतासिर होते रहते हैं। फिर अगर हम इनकी इस्लाह की फ़िक्र न करेंगे तो ख़ुद हमारी इस्लाह भी अधूरी रहेगी। हम घरों को मुसलमान बनाए बिना दुनिया को मुसलमान नहीं बना सकेंगे। इस मामले में सारी परेशानी यह है कि औरतों से हम बड़े पैमाने पर सीधे तौर पर ताल्लुक़ पैदा नहीं कर सकते। इसके लिए ख़ुद औरतों ही से मदद लेनी पड़ेगी। जो क़ौमें कोई शरई ज़ाबता (क़ानून) नहीं रखतीं, उनका मामला आसान है, वह अपनी सियासी (Political) और तमद्दुनी (Cultural) तहरीकों के लिए अपनी औरतों को बाज़ारों, कारख़ानों, पिंडालों और स्कूलों में बेझिझक ला सकती हैं। मगर हमारे लिए यह एक नाज़ुक मसला है और उसे हल करने के लिए दिमाग़ लगाने की ज़रूरत है।

पाँचवाँ काम यह सामने है कि अवाम की राय को हमवार करने के लिए बड़े पैमाने पर मुनज़्ज़म कोशिश की जाए। अब तक हमने अवाम को बराहे रास्त मुख़ातिब नहीं किया है। यही वजह है कि अभी तक हम इस समुन्द्र के ज़रा से हिस्से में कुछ हलचल पैदा कर सके हैं। अब हमें धीरे-धीरे असल समुन्द्र की तरफ़ बढ़ना है। ज़रूरी नहीं है कि अवाम पूरे के पूरे हमारे रुक्न बन जाएँ। हमारे मक़सद के लिए यह भी काफ़ी है कि देशवासियों की एक बड़ी तादाद हक़ को हक़ मान ले, हमारे मक़सद को सही जान ले, और हमारा अख़लाक़ी असर उसपर क़ायम हो जाए। इसका नतीजा यह होगा कि आगे चलकर हम जो क़दम उठाएँगे, उसमें जनता की हमदर्दियाँ हमारे साथ होंगी। अब तक हमने अपने लिट्रेचर में ज़िन्दगी के मसलों के बहुत थोड़े-से हिस्से पर बात की है और वह भी ज़्यादातर मुख़्तसर इशारों की शक्ल में है। हालाँकि इस दौर में ज़िन्दगी के हर पहलू पर हमें अपने नज़रिये से तफ़सीली रौशनी डालनी चाहिए। इल्मों को नए सिरे से मुरत्तब करना चाहिए और यह काम एक दो ज़बानों में नहीं, कई ज़बानों में करना चाहिए, ताकि ज़्यादा से ज़्यादा लोग हमारे मक़सद को समझें। इसलिए अब हमें इस मैदान में भी अपनी कोशिशों के दायरे को बढ़ाना है। फिर अभी तक हम प्रचार-प्रसार

के लिए सिर्फ़ तहरीर के ज़रिए पर निर्भर रहे हैं। तक़रीर से हमने अभी कोई काम नहीं किया है। अब हमें इस मैदान की तरफ़ बढ़ना है, लेकिन इसके लिए ज़रूरी है कि हम तक़रीर का नया ढंग अपनाएँ, नुमाइशी और हंगामी स्टेजों से दूर रहें और ज़िम्मेदाराना बात करने की आदत डालें, ताकि जो आवाज़ भी हमारी तरफ़ से बुलन्द हो, वह इतनी क़ीमती, वज़नदार और नुमायाँ हो कि लोग इसे उन बहुत-से सुरों में से एक सुर न समझें जो हंगामा पैदा करनेवाले और बेलगाम तक़रीर करनेवालों के साज़ों से निकल रहे हैं। मैंने अब तक अपने रफ़ीक़ों को तक़रीर से इसी लिए रोके रखा है कि पुरानी आदतों का असर अभी तक बाक़ी है। डरता हूँ कि कहीं उसी पुराने अन्दाज़ की तक़रीरें हम भी न करने लगें जो इस्लामी निज़ाम का नाम लेनेवालों के मुँह से शोभा नहीं देती। मैं चाहता हूँ कि आप विचारों के प्रचार-प्रसार के सभी ज़रियों को इस्तेमाल करें, मगर पहली शर्त यह है कि इन्हें इस्लामी अख़लाक़ का पाबन्द बनाएँ और उन ग़लत चीज़ों से उन्हें पाक करें जो बेलगाम क़िस्म के लोगों ने उनमें मिला दी हैं।

ये ज़रूरी बातें थीं जो मैं आपके कानों में डाल देना चाहता था। आप इनपर ग़ौर करें और मुफ़ीद मशविरों से मेरी मदद करें। अब मैं दुआ करता हूँ कि अल्लाह तआला हमें अपने अहद की ज़िम्मेदारियाँ समझने और अदा करने की तौफ़ीक़ दे, हमारी नीयतों में इख़लास और हमारे ईमान को ताक़त दे, हमारी कोशिशों में बरकत दे, हमारे थोड़े-से अमल को क़बूल कर ले और ज़्यादा अमल की हिम्मत दे और अपने उन बन्दों से हमारी ताईद करे जो हमसे बेहतर ख़ूबियाँ रखते हों और हमसे ज़्यादा बेहतर तरीक़े से दीन की ख़िदमत कर सकते हों।

दूसरी बैठक

27 मार्च, 9 बजे सुबह से 12 बजे दोपहर तक

प्रोग्राम के मुताबिक़ दूसरी निशस्त (बैठक) जमाअतों के मक़ामी कारगुज़ारी की रिपोर्टें सुनने के लिए तय थी। इसलिए कई जमाअतों के नुमाइन्दों (Representatives) ने तफ़सील में अपने काम और अपनी मुश्किलों को लोगों के सामने पेश किया। मगर इसका मतलब यह नहीं था कि अमीर जमाअत ने कारगुज़ारियों के इश्तिहार और एलान की जो मनाही कर रखी है, वह ख़त्म हो गई। नहीं, वह बन्दिश उसी तरह बाक़ी है और उसे बाक़ी रखते हुए रिपोर्टें सिर्फ़ इसलिए सभी लोगों को सुनवाई गईं कि मुख़्तलिफ़ अरकान को यह मालूम हो जाए कि कहाँ-कहाँ किस तरह का काम किस ढब पर हो रहा है और उसके मुक़ाबिले में कहाँ के लोग कितने पीछे हैं। क्या-क्या परेशानियाँ उन्हें पेश आ रही हैं और उन्हें किस तरह हल किया जा

रहा है। इस मक़सद को अमीर जमाअत ने छोटी-सी तक़रीर में अच्छी तरह बयान कर दिया। आख़िर में जब सभी मक़ामी जमाअतों की रिपोर्टें सुनाई जा चुकीं तो अमीर जमाअत की इजाज़त से मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही ने उनपर तबसिरा (समीक्षा) करते हुए बहुत ही फ़ायदेमन्द हिदायतें और मशविरे दिए। उनकी तक़रीर को यहाँ दर्ज किया जाता है—

जनाब मौलाना अमीन हसन साहब इस्लाही की तक़रीर

हाज़रीन!

मैं आपकी रिपोर्टें सुनने में ऐसा मुंहमिक था कि मुझे इन रिपोर्टों के मुख़्तलिफ़ पहलुओं पर इतना ग़ौर करने का मौक़ा नहीं मिला जितना कि उनपर तबसिरा करने के लिए ज़रूरी है। फिर भी कुछ बातें मुझे खटक रही हैं और उनके बारे में मैं अमीर जमाअत की इजाज़त से कुछ कहना चाहता हूँ। जहाँ तक आपकी कारगुज़ारियों और बयान किए हुए वाक़िआत और हालतों का ताल्लुक़ है, उनपर तबसिरा ग़ैर ज़रूरी मालूम होता है, मगर जहाँ तक दूसरी जमाअतों से ताल्लुक़ और टकराव का मामला है, उसमें इस्लाह की बड़ी गुंजाइश है और मैं इसपर तबसिरा करना चाहताहूँ।

आप लोगों ने जिन मुश्किलों को पेश किया है, उनका सामना तो इस रास्ते में ज़रूरी है, मगर हमें उनका सही इलाज सोचने से ग़ाफ़िल नहीं रहना चाहिए। सही तौर पर हक़ का काम करनेवालों को रुकावटों से तो बहरहाल दोचार होना ही है, मगर इस मरहले पर यह तरीक़ा एकदम ग़लत है कि दूसरों से ख़्वाह-मख़्वाह टकराव पैदा किया जाए। मैं यहाँ तक समझ चुका हूँ कि कुछ ज़रूरी बातों का इहतिमाम किया जाए तो हमारे रास्ते के काँटे बड़ी हद तक दूर हो सकते हैं।

इस सिलसिले में पहली चीज़ जिसपर मैंने आज भी और पहले भी बहुत ग़ौर व फ़िक्र किया है और जो बहुत ही मुश्किल मालूम होती है, बहुत ज़्यादा संजीदा तवज्जोह चाहती है। मेरे कहने का मतलब हक़ को जमाअत से बाहर के लोगों तक पहुँचाने का मसला है। दूसरी जमाअतों से हमें इसके सिवा कुछ नहीं चाहिए कि वे हक़ को साफ़-साफ़ पहचान लें। याद रखिए कि यह काम सिर्फ़ कहने से पूरा न होगा। इसके लिए हमें अपने व्यक्तिगत और इजतिमाई किरदार (Character) को ज़रिया बनाना पड़ेगा। बजाए इसके कि ज़ोरदार तक़रीरों का सैलाब बहाया जाए और नज़रियों की इशाअत (प्रचार) प्रेस के ज़रिए से की जाए, होना यह चाहिए कि अपने अमल से हम यह साबित कर दें कि हम अपने मक़सद में सच्चे हैं और मुसलमानों के लिए ख़ासकर और दुनिया के सारे ही इनसानों के लिए आम तौर से एक हक़ीक़ी फ़ायदे का काम करना चाहते हैं। हमें किसी से दुश्मनी नहीं, बल्कि दुनिया की पूरी आबादी से सच्ची हमदर्दी है।

आज़माइश के विभिन्न मौक़ों पर अगर हम अमल से यह सुबूत पेश कर दें कि हमारी ज़िन्दगी किसी ख़ास गिरोह या जमाअत या किसी क़ौम के फ़ायदे के लिए नहीं है, बल्कि हक़ के नस्बुलऐन के लिए है, तो ज़ेहनों को जीत लेने में कोई मुश्किल न होगी। सच्चाई यह है कि अभी तक हमारे साथ कई तरह की मुसीबतें चिपटी हुई हैं और इनका एक अच्छा-ख़ासा मोटा ख़ोल ख़ुद हमारे चारों तरफ़ लिपटा हुआ है। यही वजह है कि हम लोग ख़ुद अपनी दावत के रास्ते की पहली और सबसे बड़ी रुकावट हैं। यह ख़ोल हमें जितना जल्द मुमकिन हो उतार देना चाहिए और हक़ को बिलकुल खोल करके लोगों के सामने लाना चाहिए, ताकि लोग साफ़-साफ़ पहचान लें कि सच्चाई और हक़ीक़त क्या है। अगर हम अपनी बीवी-बच्चों, अपने दोस्तों, अपनी जमाअत और क़ौम की ग़लत तरफ़दारी की गन्दगियों से अपना दामन पाक कर लें तो बावजूद इसके कि दुनिया की ताने देनेवाली ज़बानें कभी बन्द नहीं हो सकतीं, मगर हमारे ख़िलाफ़ हुज्जत व दलील की ज़बान बन्द हो जाएगी। सिर्फ़ यही तरीक़ा है दुनिया को हक़ीक़त के इनकार से रोक देने का। ग़लत तरफ़दारी की बू भी अगर बाक़ी रहेगी तो हम ख़ुद अपने लिए रुकावट बने रहेंगे और अपनी दावत के रास्ते में चट्टान बनकर रुकावट बन जाएँगे। घरों में, बाज़ारों में, जलसों में, ख़ानक़ाहों और मसजिदों में हर पहलू से अपने आपको मामूली मक़सदों और उद्देश्यों से ऊँचा दिखाना ज़रूरी है।

इस गुज़ारिश की अहमियत को समझने के लिए आप लोग सूरा अंबिया को पढ़ें। अल्लाह की तरफ़ से जितने दावत देनेवाले अल्लाह के कलिमे को ऊँचा करने के लिए आए, उनमें से हर एक ने हक़ के रिश्ते के सिवा हर रिश्ते को तोड़ दिया। जाहिलियत के गर्व के सारे बंधन काट डाले, पक्षपात और तास्सुब की मोटी-मोटी ज़ंजीरों से अपने आपको आज़ाद किया। इसी का नतीजा था कि उनकी दावत बिना किसी फ़र्क़ और भेदभाव के हर हक़पसन्द दिल को अपील करती और जो लोग उनकी दावत को क़बूल करते उनके सीने में गिरोहों और जमाअतों की बरतरी के बजाए इनसानियात की ख़िदमत का जज़बा जोश मारता। अगर इन्हीं हिदायत की दावत देनेवालों के नमूने पर चला जाए तो हमारी तबलीग़ और विचार से संबन्धित मुश्किलें बिलकुल हल हो जाती हैं। इस सिलसिले में हालाँकि जमाअत के लिट्रेचर्स में ज़रूरी बातें बताई गई हैं, मगर कोई काम करने का तफ़सीली प्रोग्राम अभी हम नहीं बना सके हैं। मैं यहाँ इससे ज़्यादा कुछ नहीं कह सकता कि अपनी प्राइवेट और पब्लिक लाइफ़ में यह साबित कर देने की फ़िक्र कीजिए की आपकी सारी कोशिशें सिर्फ़ अल्लाह के कलिमे को बुलन्द करने के लिए हैं। हनफ़ियत और वह्हाबियत के झगड़ों और गिरोहों और जमाअतों की बदगुमानियों को ख़त्म करने का यही एक तरीक़ा है। हमें कोई नई जमाअत नहीं बनानी है। हमारा मक़सद सिर्फ़ हक़ को वाज़ेह (स्पष्ट) कर देना है।

एक और चीज़ जिसकी तरफ़ मैं आपको ध्यान दिलाना चाहता हूँ, वह यह है कि वह डींग और घमण्ड जो एक हक़ीक़त को पा लेने या एक इल्म को हासिल कर लेने से आदमी में पैदा हो जाता है, हक़ की दावत देनेवाले शख़्स के लिए सबसे बड़ी रुकावट है। वह समझने लगता है कि मैं दूसरों से कुछ ऊपर हूँ। इसका नतीजा यह होता है कि वह अपनी दावत की राह में ख़ुद रोक बनकर खड़ा हो जाता है। कुछ लोग इस घमण्ड और किब्र को बड़ी सफ़ाई से छुपा लेते हैं, मगर दिल में यह फ़ितना मौजूद रहता है और इसकी वजह से उनकी बातों और लेखों में एक रुकावट-सी आ जाती है और बनावट का हक़ की दावत के साथ कोई जोड़ नहीं है। डींग और घमण्ड के दिखावे से लोग बिदक जाते हैं और अपने कान बन्द कर लेते हैं। इस बीमारी का इलाज यह है कि आप इस हक़ को, जो खुलकर आपके सामने आ गया है, अल्लाह के फ़ज़्ल का नतीजा समझें और इसपर उसका शुक्र अदा करें। यह एहसास आपमें घमण्ड की जगह नर्मी और झुकाव का जज़्बा पैदा करेगा और अल्लाह के बन्दों के साथ आपके ताल्लुक़ को मज़बूत कर देगा। जहाँ ख़ुदा की मेहरबानियों का एहसास आदमी में पैदा हो जाता है, वहाँ अपने आप घमण्ड की जगह नर्मी, और झुकाव और ग़ज़ब की जगह हमदर्दी, और बुग़्ज़ और नफ़रत की जगह मुहब्बत के जज़्बे पनपने लगते हैं। हक़ की दावत देनेवालों को लोगों से वैसी ही गहराई और क़ल्बी मुहब्बत होनी चाहिए जैसी एक बच्चे के लिए माँ-बाप में पाई जाती है। उसे लोगों की ग़लतियों से मज़ा लेने के बजाए कुढ़न होती है, इहतिसाब (पूछ-ताछ) की जगह उसमें दर्दमन्दी पैदा होती है, ग़ुरूर और किब्र की जगह उसमें एक हमदर्दाना बेचैनी पैदा होती है। जब यह हालत पैदा होती है तो उसकी बोलचाल में भी वह दर्द पैदा हो जाता है जिससे पत्थर की तरह सख़्त दिल भी मोम की तरह नर्म हो जाते हैं।

मैंने रिपोर्टों को सुनकर यह महसूस किया है कि हमारे साथी मुख़ालिफ़ जमाअतों पर उन्हीं अलफ़ाज़ में चोटें कसते हैं जो ज़माने से हमारी ज़बानों पर चढ़े हुए हैं। हम अपने विरोधियों की चर्चा करते हुए उसी तरह मज़ा लेते हैं जिस तरह दूसरी जमाअतें अपने विरोधियों की बेइज़्ज़ती से मज़ा लेती हैं। बहुत-से ऐसे लोग भी हमारे अन्दर मौजूद हैं जो मजलिस में भले ही एहतियात करते हों मगर तनहाई में वे भी एक हद तक दूसरों पर ताने और तंज़ से मज़ा लेते हैं। इस तरह के दिखावे से वह रूह कभी भी पनप नहीं सकती जिसका नाम ख़ुलूस (निष्ठा) है और ख़ुलूस के बिना हक़ की दावत दूसरों के दिल व दिमाग़ में उतारना नामुमकिन है।

असल में जब हम सोचते हैं कि जो कुछ हमने जाना है वह दूसरों को नहीं मालूम है और फिर यह ख़याल करते हैं कि आख़िर इतनी खुली बात दूसरे क्यों नहीं समझते तो हमारे अन्दर कुछ क़ाइदाना और मुअल्लिमाना शान पैदा हो जाती है और हम दूसरों को इसी तरह

मलामत और सज़ा का हक़दार समझने लगते हैं जिस तरह एक उस्ताद अपने शागिर्द को उसकी हर ग़लती पर कान खींचने का हक़दार समझता है। लेकिन तालीम पर ग़ौर करनेवाले लोगों से छिपा न होगा कि तालीम का यह तरीक़ा सिरे से ग़लत है। अगर तालीम (शिक्षा) को दिलों में उतारना मक़सद है तो ग़ज़ब, तंज़ और एतिराज़, छींटाकशी, सख़्त और कड़वी बातों के हथियार उतारकर रख दीजिए। आप किसी से लड़ने नहीं जा रहे हैं। तालीम और तबलीग़ की मुहिम सामने है और इस मुहिम के लिए दिलसोज़ी, हमदर्दी और भाईचारे का एहसास के हथियार ही फ़ायदेमन्द हो सकते हैं। प्यारे नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से सवाल किया गया कि आप (सल्ल०) पर सबसे ज़्यादा सख़्त दिन कौन-सा बीता है? फ़रमाया : तायफ़ का दिन। उस दिन दुनिया का सबसे बड़ा इनसान पत्थरों की बाढ़ का निशाना बनता हुआ एक बाग़ की पनाह लेता है और उससे कहा जाता है कि इन ज़ालिमों के हक़ में बद्दुआ कीजिए, तो वह बद्दुआ करने की बजाए तायफ़वालों के लिए हिदायत की दुआ करता है। यह स्प्रिट (Spirit) पैदा किए बिना और क़ाम तो शायद हो सकते हैं, लेकिन हक़ का काम नहीं हो सकता। लोग अगर हक़ के मज़े से वाकिफ़ नहीं हैं और सच्चाई की खुशबू से महरूम हैं तो वह ग़ज़ब के नहीं, हमदर्दी के हक़दार हैं। बेशक हम ठीक ही समझते हैं कि हम हक़ पर हैं और जानते हैं कि बहुत-से लोग हक़ को पहचानने की सआदत से महरूम हैं। मगर इसपर यह कैसे जाइज़ हो गया कि उनसे बेरहमी और घमण्ड का बरताव किया जाए। हमारी कोशिश तबलीग़ करते वक़्त यह होनी चाहिए कि लोग यह महसूस न करें कि उन्हें घसीटकर या हाँककर किसी तरफ़ बुलाया जा रहा है, बल्कि यह समझें कि वे अपने आप एक सच्चाई तक पहुँचे हैं। तसलीमशुदा उसूली बातों पर सारी मुस्लिम जमाअतें एक राय हैं और अगर नर्मी, बरदाश्त, मुहब्बत और बिरादराना ताल्लुक़ से काम लिया जाए तो आसानी से उन सारी जमाअतों में तालमेल पैदा किया जा सकता है। याद रहे कि यह काम मुनाज़राबाज़ी (शास्त्रार्थ) और दिमाग़ी जीत की ख़्वाहिश के साथ चल नहीं सकता। यही ख़्वाहिश तो इनसान को पक्षपात और हिंसा पर राज़ी करती है।

आप हज़रात अपनी तक़रीरों और बातों में जैसे ही इस ख़्वाहिश का असर महसूस करें, वहीं अपने नफ़्स की लगाम खींच लें और अगर सामनेवाले की तरफ़ से इसका मुज़ाहिरा हो तो 'कालू सलामन' का तरीक़ा इख़तियार करें। आपसी ख़यालात ज़ाहिर करने के बातचीत और विचार-विमर्श के वक़्त हार-जीत का कभी सवाल ही पैदा नहीं होना चाहिए। दावत देनेवाले (दाई) का दर्जा ऐसी चीज़ों से बहुत बुलन्द है। उसे तो सिर्फ़ हक़ के कलिमे की कुछ बीज ज़ेहनों में डालने हैं और फिर दिमाग़ी खेतों की रखवाली करनी है। कभी यह ख़याल भी दिल में न आने दीजिए कि हमारी बात रह जाए। यही ख़याल इस्तेलाही मुनाज़िरा (बहस-मुबाहिसा)

की रूह है। इसकी मश्क़ हम सालों से करते चले आ रहे हैं। अब आपको पूरी ताक़त के साथ इस आदत की जड़ें उखाड़नी हैं। अब हमें मुनाज़रों, बहस व मुबाहिसों में जीतने के बजाए हारने और बार-बार हारने की मश्क़ करनी है। जहाँ बातों से ख़ुलूस की रूह ग़ायब होने लगे वहीं ज़बान पर ताले लगा लीजिए और कुछ परवाह न कीजिए कि इसपर ताली पिट जाएगी। ज़बान की हर ग़लती पर बेतकल्लुफ़ी से बेझिझक सामनेवाले से माफ़ी माँग लीजिए और इससे बेपरवाह हो जाइए कि आपका मज़ाक़ उड़ाया जाएगा। इन हार और शिकस्तों को अगर सहने की हिम्मत हो तो आगे आइए और काम कीजिए, नहीं तो अगर बहस और मुबाहिसों के हथकंडों से किसी को आप खींचकर लाएँ भी तो वह जिस रास्ते से आया है, उसी रास्ते एक दिन वापस भी हो जाएगा।

अगर इस मामले में आप नबियों (अलै०) के काम करने के तरीक़ों पर ग़ौर करें तो मालूम होगा कि उसकी कुछ ख़ूबियाँ हैं। उन ख़ूबियों को अच्छी तरह समझने की ज़रूरत है। दुनिया की मौजूदा जमाअतों में से हमारी जमाअत नबियों के तरीक़ेकार की पैरवी का पक्का इरादा करके उठी है। इसलिए हमें सीधे तौर पर वहीं से रौशनी हासिल करनी है। यह तो आप जानते हैं कि जब कभी कोई नबी आया तो उसने अपनी क़ौम को इस तरह मुख़ातिब नहीं किया— 'ऐ काफ़िरो! ईमान लाओ', 'ऐ गुमराहो! सीधी राह पर आ जाओ।' बल्कि प्यार भरे अंदाज़ में— 'ऐ मेरी क़ौम', 'ऐ लोगो', और 'ऐ किताबवालो', के लफ़्ज़ों से उन्हें मुख़ातिब किया। हद यह है कि जो लोग उनके साथ हुए, उन्होंने जब ईमानी कमज़ोरियाँ दिखाईं और तंबीह करने की ज़रूरत महसूस हुई तो उन्हें भी यूँ नहीं मुख़ातिब किया कि— 'ऐ मुनाफ़िक़ो या ऐ वादाख़िलाफ़ो! अपना तरीक़ा बदलो।' बल्कि उन्हें— 'ऐ ईमानवालो' कहकर पुकारा। फिर जो लोग इन दावत देनेवालों का साथ देने के लिए राज़ी हुए, उन्होंने अपने बात करने के अंदाज़ को हमदर्दी, मुहब्बत और नर्मी की हदों से आगे नहीं बढ़ने दिया।

फिर आगे चलकर एक मक़ाम ऐसा आ जाता है कि एक नेक और सुधारक जमाअत अपनी कथनी और करनी से हक़ को बिलकुल ज़ाहिर कर देती है और हक़ का चेहरा धूल और मिट्टी से साफ़ होकर लोगों को नज़र आने लगता है। इस मौक़े पर हक़ को खुल्लम-खुल्ला देखने के बावजूद जो लोग घमण्ड, ज़िद या तास्सुब का मुज़ाहिरा करते हैं और दलीलों का तरकश ख़ाली हो जाने के बाद भी इनकार का रवैया जारी रहता है तो फिर नबी के ख़िताब का तरीक़ा बदल जाता है। फिर वह सरकशों को साफ़ लफ़्ज़ों में, 'ऐ कुफ़्र करनेवालो!' कहकर पुकारता है और अपनी क़ौम से अलग हो जाता है। मगर उससे पहले लम्बे अर्से तक वह नर्मी से ही दावत देता है। नबी करीम (सल्ल०) ने अपनी क़ौम के साथ यह तरीक़ा उस वक़्त इख़्तियार किया जब दावत वाज़ेह हो चुकी थी और क़ौम की अन्धी मुख़ालिफ़त इस हद तक

पहुँच चुकी थी कि उन्होंने ख़ुद अपने कुफ़्र का एलान कर दिया और नबी (सल्ल०) के क़त्ल का इरादा कर लिया। एतिराज़ करनेवाले इसपर यह कहा करते हैं कि सही मानों में जब तक मुहम्मद (सल्ल०) और उनकी जमाअत कमज़ोर थी तब तक नर्म दिली और माफ़ी थी, मगर जब ताक़त आने लगी तो सख़्ती पैदा होने लगी। मगर यह बात सही नहीं है। असल बात यह है कि नबी इनसानों की कमज़ोरियों का सही-सही अंदाज़ा करता है और उन्हीं कमज़ोरियों को सामने रखकर वह उनसे मुहब्बत का सुलूक क़ायम रखता है। उसकी यह हमदर्दी इतनी ज़्यादा होती है कि बुरे लोग उसकी वजह से नाजायज़ फ़ायदा उठाते हैं। नबी यह सब कुछ देखता है, मगर किसी को पीछे नहीं फेंकता। वह सिर्फ़ आम अन्दाज़ में जमाअत और जमाअत के बाहर के लोगों पर तंक़ीद करता है— ''लोगों को क्या हो गया है कि इस तरह की बातें करते हैं और ख़ुदा के ग़ज़ब से नहीं डरते।''

इन चेतावनियों का असर यह होता है कि जो लोग दीन की गहरी जानकारी न होने की वजह से ग़लतियाँ करते हैं, वे सँभल जाते हैं। आख़िर में जाकर सिर्फ़ वे लोग रह जाते हैं जो सौ प्रतिशत हठधर्मी की वजह कर जमाअत के नज़्म को दरहम-बरहम करने के लिए हर वक़्त तैयार रहते हैं। जब उनकी तरफ़ से सुधार की हर उम्मीद ख़त्म हो जाती है तो फिर नबी अपनी मेहनतों के क़ीमती फल यानी अपनी पाक जमाअत को ख़तरे से बचाने के लिए 'वग़लु-ज़ अलैहिम', यानी उनके साथ सख़्ती करो, के तरीक़े पर मुक़र्रर किया जाता है।

आज हम जिस दौर से गुज़र रहे हैं, यह फ़ित्नों का दौर है। इसको अपनी जिन इल्मी रौशनियों पर नाज़ है, वह सिर्फ़ दुनिया में अँधेरा फैलाने में मददगार हो सकी है, बल्कि इनसाफ़ यह है कि बातिल को हक़ और हक़ को बातिल बनाकर दिखाने की कोशिश के लिहाज़ से इतिहास का कोई दौर इस दौर का मुक़ाबला नहीं कर सकता। फिर जबकि हक़ वाज़ेह और नुमायाँ नहीं है तो दूसरों पर सख़्ती करने की गुंजाइश कहाँ है? यह वक़्त 'वग़लु-ज़ अलैहिम (उनके साथ सख़्ती अपनाओ)' पर अमल करने का नहीं है। अभी तो एक लम्बा दौर प्यार और मुहब्बत का हमें तय करना है और उस दौर में किसी को पीछे नहीं फेंकना है। अलबत्ता, अगर ख़ुदा हमारी थोड़ी-सी कोशिश को क़बूल करके हमें हक़ और बातिल को साबित करने के लिए कोई नज़्म (व्यवस्था) क़ायम करने की तौफ़ीक़ दे दे और 'क़द तबै-य-नर्रुशदु मिनल ग़ैये (सही बात ग़लत ख़यालों से अलग हो गई है)' का वक़्त आ जाए तो फिर यह रौशनी खोटे और खरे, अन्धे और आँखोंवाले, मोमिन और मुनाफ़िक़ को एक दूसरे से ख़ुद अलग कर देगी।

पिछले अर्से में हमारे साथियों ने जहाँ कहीं नबियों के दावत के तरीक़े को छोड़कर जल्दबाज़ी से काम लिया है, वहाँ यह ग़लतफ़हमी फैल गई है कि हम ख़ुदा न करे मुसलमानों

को मुसलमान नहीं समझते। यह ग़लतफ़हमी नज़रअन्दाज़ कर देने के क़ाबिल नहीं है। इसका एक लाज़मी नतीजा यह होगा कि लोग हमारी दावत की तरफ़ से कान बन्द कर लेंगे। हमारा कहना सिर्फ़ यह है कि इस वक़्त मुसलमानों का एक बड़ा तबक़ा दीन की सही जानकारी से महरूम हो चुका है और तागूत की मौजूदा निज़ाम ने उनकी इस जिहालत के बढ़ाने में पूरा हिस्सा लिया है। साथ ही अपनों और परायों ने मिलकर उनको ऐसे इंजेक्शन दिए हैं कि उनकी सोचने-समझने की ताक़त ख़त्म हो गई है। हमारा फ़र्ज़ है कि हम उनकी इस ताक़त को जगाएँ। जब उनकी यह ताक़त जाग जाएगी तो वे ख़ुद अपनी मौजूदा हालत से बेज़ारी महसूस करने लगेंगे और कुफ़्र व शिर्क और निफ़ाक़ की सारी गन्दगियों से ख़ुद ही नफ़रत हो जाएगी। इस मक़सद के लिए हमें जो कुछ करना है वह सिर्फ़ यह है कि जो बातें कुफ़्र और शिर्क हैं, हम उनका कुफ़्र और शिर्क होना वाज़ेह कर दें, बस इतना ही बहुत है। किसी मुसलमान की रूह, शिर्क को महसूस कर लेने के बाद उससे दोस्ती नहीं रख सकती। जिस आदमी में सफ़ाई और तहारत का ज़ौक़ पैदा हो जाता है वह ख़ुद अपने दामन की गंदगियों को धोने लगता है। इसी तरह अगर हमने मुसलमानों में दीन की सही समझ पैदा कर दी तो वे ख़ुद ही सारी बुराइयों से पाक होने की कोशिश करेंगे।

इस दीनी शुऊर और एहसास को आम करने की कोशिश में यह ज़रूरी है कि हमारा ध्यान दीन के आम उसूल पर क़ायम रहे। छोटे-मोटे मसलों में न उलझे, दीन की जड़ तौहीद, रिसालत और आख़िरत के सही तसव्वुरात और अक़ीदों पर क़ायम है। ये अक़ीदे अगर ज़ेहनों में अपनी पूरी तफ़सीलात के साथ वाज़ेह हो जाएँ तो दीन की सही समझ पैदा हो जाएगी, और इसकी वजह से छोटी-मोटी बातों का भी सुधार होता चला जाएगा और हमें उनके लिए कोई ख़ास कोशिश नहीं करनी पड़ेगी। जब किसी आदमी में सही और साफ़-सुथरा ज़ौक़ पैदा हो जाता है तो फिर उसको रिहाइश, लिबास और बदन की एक-एक गन्दगी पर तवज्जोह दिलाने की ज़रूरत नहीं रहती, बल्कि उसकी ज़िन्दगी के हर हिस्से में ख़ुद ही सफ़ाई-सुथराई ज़ाहिर होने लगती है।

अब मैं आपके उस सवाल की तरफ़ मुतवज्जोह होता हूँ जो आपने किया है कि क्या छोटी-छोटी बातों से मेरा मतलब 'आमीन बिल जह्र' (नमाज़ में ज़ोर से आमीन कहना) वग़ैरा की क़िस्म के मसले हैं? नहीं, यहाँ छोटी-छोटी बातों से मेरा मतलब 'आमीन बिल जह्र' और 'रफ़अ यदैन' (नमाज़ में तकबीर कहते हुए दोनों हाथ उठाना) वग़ैरा की क़िस्म के मसले नहीं हैं। इन इजतिहादी मसलों में तो हमेशा हमें रवादारी ही का मसलक अपनाना पड़ेगा। इसलिए कि इनके दोनों पहलुओं के लिए दीन में गुंजाइश है। मैं यहाँ उन छोटी-छोटी बातों को नज़रअन्दाज़ करने का मशविरा दे रहा हूँ जिनके लिए दीन में कोई गुंजाइश नहीं, लेकिन दीन

की ख़िदमत की मस्लेहत का तक़ाज़ा है कि अपनी दावत के इस मरहले में हम इनसे भी नज़रें बचाएँ। अगर हम ऐसा न करेंगे तो इसका नतीजा यह होगा कि हम शाखों (डालियों) के तराशने में अपना सारा वक़्त बरबाद कर देंगे और फ़ित्नों की जड़ों की तरफ़ ध्यान करने की बारी ही न आएगी। हमारा काम सही तरीक़े पर तब ही हो सकता है जब तौहीद, रिसालत और आख़िरत सम्बन्धी सभी बातों को अच्छी तरह अवाम को समझा दिए जाएँ। यह लम्बा रास्ता तय कर लेने के बाद लोग छोटी-छोटी बातों में सही रास्ते को पा सकते हैं। धीरे-धीरे वे ख़ुद महसूस करने लगेंगे कि फ़लाँ काम जो हम करते हैं, वह हमारे तौहीद के अक़ीदे के साथ जमा नहीं हो सकता। फ़लाँ रस्म जो चली आ रही है हमारे रिसालत के तसव्वुर के साथ मेल नहीं रखती और फ़लाँ आदत जिसका चलन आम है हमारे आख़िरत के तसव्वुर के मुताबिक़ नहीं है। बहरहाल इन छोटी-छोटी बातों में किसी गिरोह का सख़्त और सुस्त कहना या किसी से रिश्ता तोड़ना हमारे काम के लिए बिलकुल नुक़सानदेह है। जहाँ तक हो सके, इन मामलों को नज़रअन्दाज़ कीजिए। अगर कोई नेक-फ़ितरत आदमी इस सिलसिले में कुछ सुनना गवारा करे तो नर्मी से कहिए कि भाई, यह क्या चीज़ें हैं जो तुमने अपना रखी हैं। फिर अगर वह कुछ असर ले तो बेहतर, नहीं तो ख़ामोश हो जाइए। भरपूर सुधार उन चीज़ों का होना चाहिए जिनसे असल दीन पर चोट पड़ती है।

सुधार के काम में तरतीब यह होनी चाहिए कि पहले किसी असल के क़रीब से क़रीब तक़ाज़े पेश किए जाएँ, फिर उससे कम, फिर उससे और कम, जैसे तौहीद के तक़ाज़ों में सबसे पहले उन चीज़ों पर ध्यान देना चाहिए जिनपर आम तौर से सभी मुसलमानों का इत्तिफ़ाक़ है। फिर आगे चलकर उन छोटी बातों की वज़ाहत कीजिए जो तौहीद की उसूलों से निकलती हैं। फिर और आगे चलिए और तौहीद के उन आख़िरी तक़ाज़ों की तरफ़ रहबरी कीजिए जिनसे अवाम की तवज्जोह तो बिलकुल हट चुकी है और उलमा (दीन का इल्म रखनेवाले) भी किसी न किसी हद तक उनके अमली तक़ाज़ों से ग़ाफ़िल हैं।

मैं उम्मीद करता हूँ कि हमारे साथी इन मशविरों पर अमल करने की कोशिश करेंगे।

तीसरी बैठक

27 मार्च, ज़ुह्र और अस्र की नमाज़ के बीच का वक़्त

यह निशस्त (बैठक) सिर्फ़ तजवीज़ों के लिए ख़ास थी। इसी लिए बहुत-से लोगों ने काम को आगे बढ़ाने के लिए अपनी-अपनी तजवीज़ें रखीं। उन तजवीज़ों को और उनपर होनेवाली बहस और मुबाहिसे को मुख़्तसर तौर पर यहाँ इसलिए दर्ज किया जाता है कि जमाअत के

अरकान और हमदर्द और उसके काम को तंक़ीदी नज़र से देखनेवाले लोग यह अन्दाज़ा कर सकें कि हमारे हल्क़ा के दिमाग़ किस ढंग पर सोच रहे हैं और ज़ेहनी तौर पर किस पहलू से क्या कमी है? अब यहाँ असल तरतीब के मुताबिक़ एक-एक तजवीज़ को पेश किया जाता है।

तजवीज़- 1 : नसरुल्लाह ख़ाँ साहब अज़ीज़, एडीटर अख़बार मुसलमान, जमाअत इस्लामी लाहौर की तरफ़ से पेश की गई।

इस तज़वीज का मक़सद यह था कि काम की रफ़्तार को और तेज़ करने के लिए एक निगराँ तंज़ीन यानी क़य्यिम जमाअत (General Secretary) मुक़र्रर किया जाए जो दौरा करके मुख़्तलिफ़ मक़ामी जमाअतों को सरगर्म रखे।

इसपर अमीर जमाअत की तरफ़ से कहा गया कि तजवीज़ की अहमियत तो बिलकुल ज़ाहिर है, अलबत्ता लायक़ आदमी का हाथ आना और उसके ख़र्चों का बार उठाने की हिम्मत करना— ये हैं दो मुश्किलें। इसका हल यूँ हो सकता है कि जमाअत बैतुलमाल को मज़बूत बनाने की फ़िक्र करे। और इधर मैं सोचकर किसी आदमी को आज़माइशी तौर पर क़य्यिम जमाअत के मंसब के लिए मुक़र्रर करता हूँ। चुनांचे इसपर जमाअत सहमत हो गई।

तजवीज़- 2 : मलिक नसरुल्लाह ख़ाँ साहब अज़ीज़, लाहौर ने पेश की।

इस तजवीज़ में यह माँग की गई थी कि जमाअत मरकज़ में क़ाबिल (Intellectuals) और अहले कलम (Writers) को इकट्ठा करे और उन्हें रिसर्च के काम पर लगा दे, ताकि वे इतमीनान से जमाअत के नज़रियों की बुनियाद पर मुख़्तलिफ़ इल्मों की तदवीन करते रहें। मलिक साहब ने इन लोगों की मआशी (Economic) ज़रूरतों को पूरा करने के लिए रायल्टी (Royalty) का तरीक़ा भी पेश कर दिया। इसपर कुछ बातें हुईं और आख़िर अमीर जमाअत की तरफ़ से यह फ़ैसला हुआ कि इस काम के लिए न सिर्फ़ यह कि गुज़र-बसर के लिए मुनासिब वज़ीफ़े कारकुनों को देने पड़ेंगे, बल्कि उनके रहने-सहने के लिए मरकज़ में काफ़ी इमारतें होनी चाहिएँ। इसके अलावा बड़े पैमाने पर एक कुतुबख़ाना (Library) मुहैया करना होगा। ये सारी ज़रूरतें जंग के ज़माने में मुहैया करना बहुत मुश्किल है। वैसे मैं ख़ुद इस तरह के काम को शुरू कर देने की बहुत ज़रूरत महसूस करता हूँ और शायद जंग के ख़त्म होने पर एक साल के अन्दर-अन्दर इल्मी शोबे के मातेहत एक तहक़ीक़ी और तसनीफ़ी मरकज़ (Research & Literary Centre) की बुनियाद रख दी जाए। मगर इस चीज़ का ख़याल रखिए कि तिजारती उसूलों पर यह काम नहीं होगा, वरना कारकुनों में कारोबारी ज़ेहनियत पैदा हो जाएगी। दिमाग़ी और इल्मी काम तो सिर्फ़ ख़िदमत के उसूल पर होने चाहिए। बैतुलमाल ऐसे लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए किसी मज़दूरी के तसव्वुर के बिना मुनासिब वज़ीफ़ा देता रहेगा।

तजवीज़- 3 : जनाब ग़ाज़ी सुल्तान महमूद साहब, मरदवाँ, ज़िला- शाहपुर ने पेश की। जमाअत इस्लामी लाहौर की तरफ़ से जनाब नसरुल्लाह ख़ाँ अज़ीज़ की तजवीज़ भी इसमें शामिल है।

इन दोनों की तजवीज़ का ख़ुलासा (सारांश) यह था कि मरकज़ मौजूदा मक़ाम से हटाकर किसी मरकज़ी मक़ाम पर लाया जाए।

इसपर अमीरे जमाअत की तरफ़ से यह जवाब दिया गया कि जब तक क़िसी मक़ाम पर ज़रूरत के मुताबिक़ ज़मीन और ज़मीन का इस्तेमाल करने के लिए ज़रूरी वसायल मुहैया न हो जाएँ, मरकज़ के तबदीली की कोई तजवीज़ वज़न नहीं हासिल कर सकती। इसपर कई जगहों से आए हुए लोगों ने ज़मीन या दूसरी चीज़ों की पेशकश की। उन हज़रात को यह कहा गया कि आप जो कुछ जमाअत को दे सकते हैं, दें। जहाँ भी ज़मीन और वसायल मुहैया हो जाएँगे, उन्हें इस्तेमाल करने में हम कोताही नहीं करेंगे।

तजवीज़- 4 : जनाब हाफ़िज़ फ़तह मुहम्मद साहब, राहूँ (जालंधर) ने पेश की। इसी में क़ाज़ी जनाब हमीदुल्लाह साहब (सियालकोट) की तजवीज़ भी शामिल है।

हाफ़िज़ साहब की तजवीज़ का मक़सद यह था कि बच्चों की सही तालीम और तरबियत के लिए मरकज़ में जल्दी एक तरबियतगाह होनी चाहिए और क़ाज़ी साहब ने जमाअत के आम अरकान और मुबल्लिग़ों की ज़रूरी तरबियत के लिए मुनासिब इनतिज़ाम की माँग की।

इस तजवीज़ के जवाब में अमीर जमाअत ने स्पष्ट रूप से बताया कि ये दोनों काम हमारे सामने हैं। असबाब (साधनों) की कमी की वजह से अब तक दोनों स्कीमें (Schemes) खटाई में पड़ी रहीं, मगर अब मजबूर होकर अल्लाह के भरोसे क़दम आगे बढ़ाने का फ़ैसला कर लिया गया है। मैं मौलाना अमीर अहसन साहब और कुछ दूसरे साथियों के मशविरे से काम का नक़्शा (प्रोजेक्ट) तैयार करके इस सिलसिले में बहुत जल्दी काम शुरू कर देनेवाला हूँ।

तजवीज़- 5 : जनाब मुहम्मद शरीफ़ साहब, नौशहरा ने पेश की।

इस तजवीज़ का फ़ायदा यह था कि जमाअत के उन हुनरमन्द अरकान को जो सरमाया (पूँजी) नहीं रखते, जमाअत के सरमाया से कारोबार पर लगाया जाए। इन लोगों की पूरी कमाई बैतुलमाल में चली जाया करे और उन्हें सिर्फ़ ज़रूरतभर मुनासिब मुआवज़ा मिलता रहे। इससे मशविरा देनेवाले का मक़सद बैतुलमाल को मज़बूत बनाना था।

इसपर बहुत देर तक मशविरा होता रहा। आख़िर में अमीर जमाअत इस नतीजे पर पहुँचे कि कारोबार के उसूलों पर जमाअत की तरफ़ से कोई स्कीम अमल में न लाई जानी चाहिए। अलबत्ता लोग आपस में अपनी तरफ़ से इस ढंग पर काम करें तो इससे किसी को इख़्तिलाफ़

न होगा। इसपर तजवीज़ रखनेवाले ने अपनी तजवीज़ वापस ले ली।

आपसी मशविरों के बीच में चूँकि बैतुलमाल को मज़बूत करने का मसला सामने आ गया था, इसलिए एक तजवीज़ हाफ़िज़ अताउर्रहमान साहब ने यह पेश की कि जमाअत के सभी अरकान को अपनी आमदनी का एक तयशुदा हिस्सा बैतुलमाल को देना चाहिए। इसपर अमीर जमाअत ने यह फ़ैसला दिया कि क़ायदे क़ानून के ज़रिए से अरकान को इनफ़ाक़ पर राज़ी करना हमारी पॉलिसी (Policy) के ख़िलाफ़ है। हाँ, जिस रुक्न को ख़ुद से अपने फ़र्ज़ का एहसास हो, वह अपने ऊपर ख़ुद पाबन्दी लगाए।

इसके बाद नईम सिद्दीक़ी साहब ने एक और तजवीज़ रखी, जिसका मक़सद यह था कि चूँकि ज़ालिमाना निज़ामे मईशत (Economic System) ने आमदनी के हलाल ज़रियों तक को नापाक बना डाला है और हममें से किसी की भी आमदनी पाक नहीं रह गई है। इसलिए हमारे लिए सही तरीक़ा यह है कि मजबूरी की वजह से फ़ायदा उठाते हुए हम सिर्फ़ ज़िन्दगी की ज़रूरतों की हद तक अपनी आमदनियों को इस्तेमाल करें और बक़िया को बैतुलमाल के हवाले कर देने को ज़रूरी समझें। इस ग़रज़ के लिए जमाअत ख़र्चों की मुनासिब हद तय कर दे।

इसपर अमीर जमाअत ने जवाब में कहा कि ख़र्च की हदबन्दी से जो क़ानूनियत लाज़िम आती है हम उसे इख़तियार नहीं कर सकते। इसलिए तजवीज़ देनेवाले ने यह तरमीम (Amendment) कर दी कि अगर क़ानूनी तौर पर नहीं तो कम से कम इख़लाक़ी तौर पर हमें इसका पाबन्द हो जाना चाहिए। तजवीज़ की इस शक्ल से अमीर जमाअत ने इत्तिफ़ाक़ कर लिया, मगर दूसरे साथियों के एतिराज़ों का सिलसिला चूँकि थमने में नहीं आ रहा था, इसलिए तजवीज़ देनेवाले ने राज़ी ख़ुशी अपनी तजवीज़ वापस ले ली।

तजवीज़- 6 : हाफ़िज़ अताउर्रहमान साहब, दारुस्सलाम ने पेश की।

हाफ़िज़ साहब ने इस ज़रूरत को वाज़ेह कर दिया कि आज का इनसान एक नए मआशी निज़ाम (New Economic System) का तलबगार है और जमाअते इस्लामी को एक मआशियात के तहक़ीक़ की मजलिस बनानी चाहिए, जो एक तरफ़ इस्लामी उसूले मईशत (आर्थिक सिद्धांतों) को जमा करे और दूसरी तरफ़ आज के दौर के इल्मुल-मईशत (Economics) का मुताला करे, यहाँ तक कि एक नई इल्मुल-मईशत (अर्थशास्त्र) तैयार हो जाए। यह मजलिस अपने ख़र्चों को सहमाही (Quaterly) या छःमाही (Halfyearly) रिपोर्टों के प्रकाशन से पूरा कर सकती है।

इस तजवीज़ की अहमियत को अमीर जमाअत ने महसूस किया, मगर इस काम को तजवीज़ के कामों में शामिल किया, यानी जहाँ हमारा प्रस्तावित इदारा तहक़ीक़ाते इल्मिया दूसरे मुख़तलिफ़ इल्मों की तदवीन करता रहेगा, वहीं मआशियात (Economy) के मैदान में भी

तहक़ीक़ व तदवीन (शोध एवं सम्पादन) जारी रहेगी।

तजवीज़- 7 : मुहम्मद यहया साहब, दारुलस्सलाम, ने पेश की।

यह तजवीज़ जमाअत को एक ख़ास पहलू से मआशी (आर्थिक) तबदीलियों पर आमादा करने के लिए पेश की गई थी। इसका फ़ायदा यह था कि जमाअत आक़ा और ग़ुलाम के बराबरी के उसूल पर मुलाज़िमों और मज़दूरों के हुक़ूक़ तय करे और उनकी अदायगी में अरकान ख़ास मुस्तैदी दिखाएँ।

इस तजवीज़ पर जनाब अमीन अहसन इस्लाही साहब ने यह ख़याल ज़ाहिर किया कि उसूलन यह माँग अपनी जगह पर दुरुस्त है, लेकिन अगर तजवीज़ के मुताबिक़ मसले के कुछ सीमित पहलू लिए जाएँ तो हमपर यह एतिराज़ होगा कि इनके पास कोई ठोस निज़ाम (व्यवस्था) नहीं है। हालाँकि इस्लाम ने इस मामले में बहुत तफ़सील से हुक्म दिए हैं। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि इन हुक्मों को तालीम और तबलीग़ के ज़रिए से लोगों तक पहुँचाया जाए। इसके बिना अगर छोटी-छोटी तबदीली हो तो यह नाकाफ़ी होगी।

इसके बाद अमीर जमाअत ने अपना ख़याल ज़ाहिर करते हुए यह कहा कि मैंने बहुत-सी तजवीज़ों के बीच में यह महसूस किया है कि लोग बुनियादें उठाने से पहले खिड़कियाँ और रौशनदान बना लेना चाहते हैं। मैं मानता हूँ कि ये सब चीज़ें ज़रूरी हैं, मगर अपनी जगह पर। दीनी क़द्रो (मूल्यों) को उलट-पलट देना फ़ायदेमन्द नहीं होगा। जो मआशी सुधार हमें चाहिए हैं, वह क़ानूनसाज़ी से नहीं होगी, बल्कि ईमान और अख़लाक़ की मज़बूती से होगी। हमें एक बच्चे की तरह फ़ितरी तरक़्क़ी करना है। यह मुनासिब नहीं होगा कि आप वक़्त से पहले बनावटी तौर पर बालिग़ बनने के लिए बाज़ार से दाढ़ी ख़रीदकर लगाएँ, चाहे माहौल का दबाव और माँग किसी पहलू से कितनी ही क्यों न बढ़ जाए। वक़्त से पहले कोई क़दम उठाना मुनासिब नहीं होगा।

इस बहस के बीच में अमीर जमाअत की तरफ़ से भी यह बात साफ़ कर दी गई थी कि ज़बरदस्ती किसी तजवीज़ को रद्द नहीं किया जाएगा, बल्कि दलीलों से मुतमइन करने की कोशिश की जाएगी।

तजवीज़- 8 : जनाब मुहम्मद फ़ाज़िल साहब, अमृतसर ने पेश की।

तजवीज़ पेश करनेवाले ने बुनियादी तालीम के लिए निसाब (Syllabous) की तदवीन (सम्पादन) की ज़रूरत को पेश किया और अमीर जमाअत ने मुख़्तसर में यूँ कहा कि मेरा मिज़ाज कुछ इस क़िस्म का है कि कच्चे काम करने पर मेरी तबीयत आमादा नहीं होती। निसाब (पाठ्यक्रम) का तक़ाज़ा बहुत ज़ोरदार है, मगर ठोस और इतमीनानबख़्श काम करने के लिए हालात के इन्तिज़ार में हूँ। जमाअती हैसियत से हम वही चीज़ सामने लाएँगे जो ठोस और

मुकम्मल हो। इससे पहले आप लोग अपने-अपने मदरसों का काम चलाने के लिए ग़ैर रस्मी तौर पर जमाअत के उन लोगों से मशविरा लें जो तालीम के कामों से नज़री या अमली ताल्लुक़ रखते हैं।

तजवीज़- 9 : मुहम्मा फ़ाज़िल साहब, अमृतसर ने पेश की।

इस तजवीज़ का मक़सद यह था कि हमारे साथी अरबी बोल-चाल की आदत डालें, ताकि कुरआन और हदीस समझने में आसानी हो और इस्लामी तहज़ीब परवान चढ़ने लगे।

इसपर जनाब चौधरी मुहम्मद अकबर साहब, हेडमास्टर, लायलपुर, ने यह कहा कि अब तक अरबी पढ़नेवालों और न पढ़नेवालों में अमलन कोई नुमायाँ फ़र्क़ नहीं है। ख़ुद ईराक़, मिस्र और अरब के लोग अरबी बोलते हैं, मगर वे भी मग़रिब (Western Culture) से मुतास्सिर हैं। ऐसे ग़ैर फ़ितरी तरीक़े हमारे मक़सद के लिए कुछ ज़्यादा फ़ायदेमन्द नहीं हैं।

इसके बाद मौलाना अमीन अहसन साहब ने यह कहा कि जहाँ तक कुरआन और हदीस को समझने-समझाने का ताल्लुक़ है, हम एक ख़ास गिरोह को इतना तैयार कर देना चाहते हैं कि वह तहक़ीक़ी नज़र से दीन को समझे और समझाए। इस ग़रज़ के लिए अरबी बोल लेने से काम नहीं चलता। रहे आवाम तो उन्हें हम ख़ुद उन्हीं की ज़बानों में इस्लाम की सादा तालीम देंगे।

अमीर जमाअत ने इस सिलसिले में अपनी राय देते हुए कहा कि जिन लोगों की मादरी ज़बान (Mother Tongue) अरबी है, और जो हज़रात अरबी मदरसों में अरबी बोलते हैं वे भी उस अरबी से अनजान हैं जो कुरआन और हदीस को समझने के लिए बेहद ज़रूरी है। हम उस अरबी से साथियों को वाक़िफ़ कराना चाहते हैं, मगर इस सिलसिले में अरबी बोलचाल की ज़रूरत नहीं। हम लोगों की और अपनी मादरी ज़बानों को ख़त्म करने के हक़ में नहीं हैं।

तजवीज़- 10 : अमीर जमाअत मौलाना मौदूदी, दारुस्सलाम ने पेश की।

अमीर जमाअत की तरफ़ से जमाअत का लिट्रेचर छापने के लिए युनाइटेड पब्लिशर्स, लाहौर (United Publishers, Lahore) और जनाब मौलवी सनाउल्लाह ख़ाँ साहब (लाहौर) की तरफ़ से आई हुई दो पेशकशों (Offers) को आए हुए लोगों के सामने रखकर मशविरा मालूम किया गया कि किस पेशकश को क़बूल किया जाए?

यूनाइटेड पब्लिशर्स प्रकाशन के हुकूक़ मुस्तक़िल तौर पर लेना चाहते थे, मगर मौलवी सनाउल्लाह साहब मुआवज़े के साथ काग़ज़ मुहैया कर देने की हद तक मामला करने के ख़्वाहिशमन्द थे। इसपर बहस और सोच-विचार के बाद फ़ैसला हुआ कि मौलवी सनाउल्लाह ख़ाँ साहब की पेशकश को क़बूल कर लिया जाए।

तजवीज़- 11 : जनाब हकीम मुहम्मद हुसैन साहब, कपूरथला ने पेश की।

तजवीज़ पेश करनेवाले की माँग यह थी कि अमीर जमाअत की पूरी पैरवी को दस्तूरी तौर पर ज़रूरी ठहरा दिया जाए, मगर इसपर यह फ़ैसला हुआ कि चूँकि दस्तूर (Constitutions) की तरमीम (Amendment) पूरी जमाअत के इजतिमा में सर्वसम्मति (इत्तिफ़ाक़े राय) से हो सकती है, इसलिए इस छोटे-से इजतिमा में इसे पेश नहीं होना चाहिए। इसलिए हकीम साहब ने तजवीज़ वापस ले ली। इसके बाद कुछ सवालों के ज़बानी जवाब दिए गए।

चौथी बैठक

27 मार्च, मग़रिब और इशा की नमाज़ के बीच का वक़्त

यह बैठक अमीर जमाअत की तरफ़ से हिदायतें देने केलिए प्रोग्राम में ख़ास तौर पर रखी गई थी। इसलिए ये हिदायतें एक तक़रीर की शक्ल में दी गईं, जिन्हें यहाँ लिखा जाता है—

अमीर जमाअत की आख़िरी तक़रीर

जो रुदादें सुबह की बैठक में जमाअतों की तरफ़ से पेश हुई हैं, उनपर मेरे मुहतरम साथी मौलाना मुहम्मद अमीन अहसन साहब ने जो तबसिरा किया है उसके बाद और तबसिरे की ज़रूरत महसूस नहीं होती। मुझे कुछ बातों के मुताल्लिक़ सिर्फ़ कुछ मशविरे पेश करने हैं।

सबसे पहले तबलीग़ी पॉलिसी के बारे में यह समझ लीजिए कि हमारी दावत का उसूल 'अल अक़दम, फल अक़दम' होना चाहिए। यानी जो चीज़ जितनी ज़्यादा अहम और ज़्यादा ज़रूरी है उसे उतना ही पहले लेना चाहिए और उसपर उतना ही ज़्यादा ज़ोर देना चाहिए। इसी तरह जिस चीज़ की दीनी अहमियत कम है उसपर बाद में ध्यान देना चाहिए और उसकी क़द्र व क़ीमत को मुबालिग़े से ज़्यादा कभी नहीं बढ़ाना चाहिए।

दूसरी बात यह ज़ेहन में बिठा लीजिए कि छोटी-छोटी बातों में से एक-एक पर अलग-अलग ज़ोर देने के बजाए बुनियादी और उसूली बात की फ़िक्र करनी चाहिए। जड़ और बुनियाद की इस्लाम से शाख़ की इस्लाह अपने-आप एक फ़ितरी नतीजे के तौर पर हो जाती है। फ़र्ज़ कीजिए कि किसी मकान में आग लगी हुई है और जगह-जगह से कड़ियाँ, तख़्ते जल-जलकर गिर रहे हैं। ऐसे मौक़े पर एक-एक कड़ी को गिरने से रोकने के लिए अलग-अलग तदबीरें नहीं अपनाई जाएँगी, बल्कि सीधे एक ही तदबीर (उपाय) से आग बुझाने की फ़िक्र की जाएगी। या मिसाल के तौर पर अगर किसी शख़्स का ख़ून ख़राब हो और उसके बदन पर जगह-जगह फोड़े-फुन्सियाँ निकल रहे हों तो एक-एक फोड़े का ऑप्रेशन करने और एक-एक नासूर पर फाहा रखने के बजाय ख़ून साफ़ करने की तदबीर की जाएगी। इसी उसूल

पर हमारे तबलीग़ करनेवालों को मक़ामी हालात पर ग़ौर करके यह मालूम करना चाहिए कि हमारी छोटी-छोटी गुमराहियों की असल वजह है क्या? और फिर हर चोट असल वजह को दूर करने के लिए लगाई जानी चाहिए। इस काम के बीच में ख़राबी की शाख़ों की बढ़ोत्तरी से ज़रा भी न घबराना चाहिए। इसी तरह जिन अच्छाइयों को बढ़ावा देना है उनकी जड़ को समझने की कोशिश करनी चाहिए, और फिर उसकी सिंचाई में पूरी जान लड़ा देना चाहिए। यह जड़ अगर क़ायम हो गई हो तो पत्ते और फल-फूल अपने आप निकलते जाएँगे।

जमाअत का पूरा लिट्रेचर इसी उसूल पर लिखा गया है। आप जानते हैं कि इसमें बुनियादी बातों की मज़बूती के लिए पूरा ज़ोर दलील पर इस्तेमाल किया गया है। मगर छोटी-छोटी बातों को बिलकुल नज़रअन्दाज़ कर दिया गया है। शाख़ों की कटाई-छँटाई की बजाय जड़ और तने की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है। आप लोग मुसलमानों के जीवनरूपी महल की मिटती हुई ख़ूबसूरती के निशानों की तरफ़ ज़्यादा तवज्जोह न दें, बल्कि उसकी बुनियादों की फ़िक्र करें, नहीं तो दीवारों की ख़ूबसूरती तो तरक़्क़ी कर जाएगी, मगर इसके पूरा होने से पहले आप पूरी इमारत को खण्डहर बनता हुआ देखने पर मजबूर हो जाएँगे।

हमारी ज़बानों पर जब कभी इस्लाह (सुधार) का नाम आता है तो ज़ेहन अपने-आप छोटी बुराइयों की तरफ़ फिर जाता है और फिर इस्लाह का हर इलाज उसी पुराने ज़ौक़ के मुताबिक़ किया जाता है। आप लोग अब इस ज़ौक़ को पूरी तरह बदल डालिए। बार-बार के तजुर्बे से मालूम हो चुका है कि छोटी-छोटी बातों पर हमला करने से हम अपने मक़सद में कामयाब नहीं हो सकते। यह रास्ता बहसों और मुनाज़िरों की घाटियों में से होकर गुज़रता है और इस ढंग पर काम करने से ख़्वाह-मख़्वाह जज़बात भड़कते हैं। तरह-तरह के चुभनेवाले लक़ब जैसे- 'वह्हाबी' और 'बिद्दती' वग़ैरा ज़बानों पर आने लगते हैं। यहाँ तक कि मार-पीट तक की नौबत पैदा हो जाती है। तबलीग़ के इस तरीक़े को दुहराने से बिलकुल परहेज़ कीजिए।

जैसा कि मौलाना अमीन अहसन साहब ने अपनी तक़रीर में वाज़ेह किया है, अगर आप लोग ग़ौर करें तो मालूम होगा कि सही मानों में सारी ख़राबियाँ या तो तौहीद को न समझने की वजह से पैदा होती हैं, या रिसालत की हक़ीक़त को न जानने से, या आख़िरत के अक़ीदे की जानकारी न होने से। इसके अलावा कुछ ख़राबियाँ ऐसी भी हैं जो दीन की जड़ और शाख़ों की सही तरतीब को उलट देने से पैदा हुई हैं। ख़ुद बिगाड़ के ये ज़रिए भी अपना एक सबब रखते हैं और वह है किताब और सुन्नत (क़ुरआन और हदीस) से दूरी। यह सबब सिर्फ़ जाहिलों ही में नहीं पाया जाता है, बल्कि बहुत-से आलिम तक किताब और सुन्नत से गहरी वाक़फ़ियत नहीं रखते। अब हमें इन हालात को बदलना है तो सुधार का काम बुनियाद से शुरू

करके ऊपर की तरफ़ ले जाना चाहिए। जब तक बुनियादी अक़ीदों का सुधार नहीं हो जाता, लोगों की छोटी-मोटी गुमराहियों को सब्र से गवारा करना पड़ेगा। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि फ़रुई और छोटी-छोटी बातों के मामले में लोगों को खुला छोड़ दिया गया है, बल्कि मतलब यह है कि पहले क़दम पर छोटी-छोटी बातों पर बहुत ज़्यादा ज़ोर हरगिज़ न दिया जाए।

इस हक़ीक़त का इनकार नहीं किया जा सकता कि बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो शरारत और ख़बासत की बिना पर ख़राबियों की हिमायत करेंगे। अवाम बेचारे सिर्फ़ जिहालत और नाजानकारी की वजह से भटके हुए हैं। एक लम्बे अर्से से ग़लत तालीम और तरबियत से उनके ज़ेहन में यह बात उतर गई है कि जिन तौर-तरीकों को वे अपनाए हुए हैं, उन्हीं का नाम 'दीन' है। इन बेचारों की इस्लाह सिर्फ़ इसी तरह से हो सकती है कि सब्र और बरदाश्त से धीरे-धीरे तौहीद, नुबूवत और आख़िरत के इस्लामी तसव्वुरों को उनके दिलों में बिठाया जाए। उनके अक़ीदों की इस्लाह में अगर हम कामयाब हो जाएँ तो कोई विरोधी 'वह्हाबी-वह्हाबी' पुकारकर भीड़ जमा न कर सकेगा, बल्कि ख़ुद मैदान छोड़ने पर मजबूर हो जाएगा।

अरब के इनकिलाब पर अगर आप ग़ौर करें तो इस दावे की सच्चाई अच्छी तरह मालूम हो जाएगी। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की दावत से मुँह फेरनेवालों में बिलकुल छोटा-सा एक गिरोह ऐसा था जो अपनी ग़रज़ों की बिना पर मुख़ालिफ़त कर रहा था। बाक़ी सब लोग धोखे और फ़रेब में थे। फिर जब तहरीक फैल निकली और हक़ खुलकर सामने आ गया तो बेग़रज़ हक़पसन्द लोगों के लिए इनकार के रास्ते बन्द हो गए, देश की आम आबादी ने सच्चाई के आगे हथियार डाल दिए और आख़िर में नतीजा यह हुआ कि जो लोग ग़रज़ और हितों की बिना पर लड़ रहे थे, उन्होंने देखा कि मैदान में हम अकेले रह गए हैं, इसलिए वे सिर झुका देने पर मजबूर हो गए। आज भी हक़ की दावत की कामयाबी का यही रास्ता है। अगर आप सच्चाई को लोगों के सामने बिलकुल ज़ाहिर कर दें तो उनमें से नेक़-नियत, धोखा खाए लोगों का जादू उतर जाएगा और वे अपने-अपने बड़ों को अकेले छोड़कर आपके साथ आ मिलेंगे। फिर जो लोग ग़रज़ और हितों की बिना पर रास्ते की रुकावट बने हुए हैं, वे भी इतने बेबस हो जाएँगे कि हमारी चलती हुई गाड़ी उनके रोके न रुक सकेगी।

यह प्रोग्राम अगर अपनाना हो तो फिर 'ज़ोर से आमीन कहने', 'तीजे' और 'कुल' के झगड़े को ख़त्म कीजिए। ग़ौर तो कीजिए, क्या अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ऐसी ही ख़राबियों की इस्लाह (सुधार) के लिए आए थे? क्या इस्लाम का मक़सद बस इतना ही कुछ है? क्या कुरआन की तालीमात इनसान से इतना ही कुछ माँग करती है? अगर नहीं, तो फिर आपका पूरा ध्यान उन अहम और ज़रूरी कामों की तरफ़ क्यों नहीं जाता, जिनके लिए हर दौर में नबी

(अलै०) विरोधियों के ज़ुल्म का निशाना बनते रहे? यह छोटी-छोटी बातें, जिनकी अहमियत बहुत बढ़ा दी गई हैं, दीन के क़याम के काम में कोई अहमियत नहीं रखतीं। फ़िक्र तो इसकी कीजिए कि लोग ख़ुदा के दीन को राज़ी-ख़ुशी अपना लें और नबी की सुन्नत की पैरवी करने पर तैयार हो जाएँ। यह चीज़ पैदा हो गई तो फिर जिसको जो चीज़ किताब और सुन्नत (क़ुरआन और हदीस) से साबित होती नज़र आएगी, वह उसे अपना लेगा और जिसका सबूत क़ुरआन और हदीस से न मिलेगा, उसे छोड़ देगा। ज़ोर तो इसी एक बुनियादी इस्लाह पर देना चाहिए। उसूल से फ़ुरूअ यानी जड़ से शाख़ की तरफ़ ले चलने की जो तरतीब नबी (सल्ल०) के तरीक़े में पाई जाती है उसे अगर नज़रअन्दाज़ करके सिर्फ़ हदीस की किताबों की पैरवी शुरू कर दी जाए तो यह हदीस की किताबों की पैरवी तो होगी, नबी (सल्ल०) के तरीक़े की पैरवी न होगी।

इस्लामी दौर से पहले अरब में इससे कम ख़राबियाँ नहीं थीं जितनी आज हमारे दौर में पाई जाती हैं। फिर क्या एक ही वक़्त सबपर चोट लगाई गई थी? क्या इस्लाह की घाटी को एक ही छलाँग में तय कर डाला गया? नहीं, बल्कि इस्लाह की बुनियादें दुरुस्त की गईं, फिर बुनियादी अख़लाक़ी बातों की तालीम दी गई, फिर ज़िन्दगी के दामन से एक-एक दाग़ को धोने का सिलसिला तरतीब के साथ कई सालों तक जारी रहा। अगर आप लोग नबी (सल्ल०) की पैरवी करना चाहते हैं तो पहले नबी (सल्ल०) के काम करने के तरीक़ों को बहुत अच्छी तरह समझ लीजिए, फिर आगे क़दम बढ़ाइए।

एक और चीज़ मैंने यह महसूस की है कि हमारे साथियों में काम को मुबालिग़े से पेश करने का जज़्बा भी कभी-कभी पैदा हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि इस जज़्बे को ख़त्म कर दिया जाए। न सिर्फ़ यह कि अपनी कारगुज़ारी बताने में मुबालग़े का इस्तेमाल न किया जाए, बल्कि अपनी जगह अपने काम को तसल्लीबख़्श भी न समझा जाए। अच्छे से अच्छे तरीक़े पर काम कर लेने के बाद भी मुतमइन न हो जाइए और उसके अच्छे पहलुओं पर मुतमइन होने के बजाए उसके कमज़ोर पहलुओं को देख-देखकर बेचैन रहिए। जो काम सही हुआ हो उसपर ख़ुदा का शुक्र अदा कीजिए और जो कमी रह गई हो, उसे दूर करने की तौफ़ीक़ भी उससे माँगिए। फिर मुझे यह भी शक है कि दूसरी जमाअतों के लोगों में काम करते वक़्त आपपर बहस व मुबाहिसे और मुनाज़िरे की रूह छा जाती है और शेख़ी और घमण्ड की शक्ल पैदा हो जाती है। अगर ऐसा नहीं है तो बहुत अच्छा है और अगर सही मानों में यह शक सही है तो इन बलाओं से नजात हासिल कीजिए।

इस सिलसिले में अपने अमल के तरीक़े और अपने बातचीत के अन्दाज़ से दूसरी जमाअतों पर यह वाज़ेह कर दीजिए कि हम किसी से जमाअती कशमकश नहीं करना चाहते।

हमारी ग़रज़ ख़राबी की बुनियादों को मिटाना है और हमारा ख़िताब पूरी दुनिया के इनसानों से है। जो भी हक़ से मुँह मोड़े हुए हैं, हम बस उसकी ग़लती को साफ़ बता देंगे। इसके बाद हमारी ख़ास तौर पर उसके ख़िलाफ़ कोई कशमकश न होगी। बहरहाल, किसी जमाअत को कम से कम आपके काम करने के तरीक़े की वजह से इस बदगुमानी का मौक़ा न मिलना चाहिए कि आप उसके दुश्मन बनकर उठे हैं। हमें तो सिर्फ़ निज़ामे कुफ़्र व जाहिलियत का मुख़ालिफ़ बनकर रहना है, उसी से मुक़ाबला करना है और उसके साथ जिसका लगाव जितने दर्जे का होगा उसी अनुपात से हमारी इस दुश्मनी में भी इज़ाफ़ा होगा।

कुछ साथियों की तरफ़ से पूछा गया है कि क्या हम उन जलसों और तक़रीबों में शामिल होकर तक़रीर कर सकते हैं जो आम अंजुमनों की तरफ़ से मुंअक़िद (आयोजित) हुआ करती हैं? इसमें शक नहीं कि हमें इस ज़रिए से अपने ख़यालों को फैलाने के मौक़े मिलते हैं, मगर मेरे देखने में आया है कि यह काम का तरीक़ा फ़ायदेमन्द नहीं है। एक स्टेज पर जब तरह-तरह की बोलियाँ बोली जाती हैं और उन्हीं के बीच में हमारी दावत भी पेश की जाती है तो लोग यह समझते हैं कि यह भी इन बोलियों में से एक बोली है जो हमें खुश करने के लिए सुनाई जाती है या यह जलसा एक दिमाग़ी दस्तरख़्वान है, जिसपर जहाँ तरह-तरह के मुरब्बे और अचार रखे हैं, वहाँ एक नई क़िस्म का यह अचार भी रख दिया गया है। अंजुमनबाज़ी के नक़्क़ारख़ाने में अगर मान लीजिए आपने अच्छे ढंग से अपना पैग़ाम पेश कर दिया तब भी नतीजा इससे ज़्यादा कुछ न होगा कि लोग दाद देते हुए कहेंगे कि यह साहब ख़ूब बोले। हमारी क़ौम का हाल आजकल उस बिगड़े हुए रईस का-सा हो गया है जिसके चारों तरफ़ बहुत-से ख़ुशामदी रईस लगे हुए हों और उसे ख़ुश करने में लगे हों। इन ख़ुशामदियों में शामिल होकर आप दीन की हिकमत और ज़िन्दगी की सच्चाइयों को चाहे कितनी ही संजीदगी से पेश करें, बहरहाल ये रईसाना मिजाज़वाली क़ौम आपकी बातें उन्हीं कानों से सुनेगी जिनसे वह दूसरे साथियों की बातें सुनती है। इन वजहों से मैं जमाअत के मुक़र्रीन को मशविरा देता हूँ कि पहले अपनी इनफ़िरादियत या दूसरे लफ़्ज़ों में अपनी इमतियाज़ी हैसियत को ख़ूब मज़बूत कर लीजिए और बिलकुल अलग तौर पर अपने नज़रियों को पेश करते रहिए। अलबत्ता अगर यह मुमकिन हो कि बाज़ार में जो अच्छी अवाज़वाले रिकार्ड ख़ूब मशहूर हैं उनके अन्दर आप अपनी बात भर सकें तो यह सूरत फ़ायदेमन्द साबित होगी। मुख़्तलिफ़ लीडरों और मुक़र्रिर (वक्ताओं) पर आप अपना असर इस हद तक फैला दीजिए कि इनकी तक़रीरों में चाहे न चाहे आप ही के ख़यालात आने लगें। जब वह कुछ देर तक सिर्फ़ ज़बानी हमारे नज़रियों को बयान करते रहेंगे तो दूर नहीं कि एक रोज़ उन्हें अपने ज़मीर की आवाज़ और आम राय के दबाव से अपनी अमली रविश को भी बदलना पड़ेगा। यह स्कीम अगर

बड़े पैमाने पर अमल में लाई जाए तो आख़िरकार मुआवज़े पर तक़रीर करनेवाले मुक़र्ररीन जिन्होंने पूरी क़ौम का मिज़ाज बिगाड़ रखा है, स्टेज से हटा दिए जाएँगे और काम के आदमियों को पब्लिक ख़ुद सामने ले आएगी।

यह मालूम करके मुझे बहुत ख़ुशी हुई कि आप लोग जगह-जगह अपने नज़रियों को फैलाने के मदरसे क़ायम करने की फ़िक्र में हैं। बल्कि कई जगहों पर अमलन क़दम उठ चुका है। मगर इस सिलसिले में यह एहतियात ज़रूर कीजिए कि एक मदरसा को चलाना अपने आपमें मक़सद बनकर न रह जाए। हमें तालीम को मक़सद हासिल करने के ज़रिए की हैसियत से इस्तेमाल करना है। जहाँ महसूस हो कि आपका मदरसा मक़सद की जगह ले रहा है या मक़सद में रुकावट बन रहा है, तो ऐसे मदरसे को ढाह दीजिए और उसके खण्डहरों को रौंदते हुए अपनी मंज़िल की तरफ़ आगे बढ़िए। इस ग़रज़ के लिए मक़सद को हमेशा निगाहों के सामने रखने की ज़रूरत है। मिसाल के तौर पर आप देखते हैं कि एक क़ौम ने जो क़ारखाने ख़ुद जंगी मक़ासिद के लिए करोड़ों रुपये ख़र्च करके बनाए होते हैं, उन्हें जब वह असल मक़सद में रुकावट बनते देखती है तो ख़ुद अपने हाथों से उन्हें तबाह कर देती है। इस जंग (Second World War) में रूस ने अपने बहुत-से सनअती मरकज़ों (औद्योगिक केंद्रों) को और फ्रांस ने अपने समुद्री बेड़े को तबाह कर दिया। इससे ख़बरदार मैं आप लोगों को इसलिए कर रहा हूँ कि पहले भी हमारे तालीमी काम करनेवाले बहुत-से बुज़ुर्गों से यही ग़लती हो चुकी है। यानी उन्होंने मदरसे चलाने को ज़रिया के बजाए मक़सद की हैसियत दे दी। आप लोग इस सिलसिले में बहुत एहतियात से काम लें।

अब रहा मक़ामी काम और तंज़ीम को मज़बूत बनाने का सवाल तो इस ग़रज़ के लिए मैं कुछ मोटी-मोटी बातों की तरफ़ आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ।

सबसे पहले ध्यान देने की चीज़ यह है कि अपने-अपने हलक़े के अरकानों में माली क़ुरबानी के जज़्बे को उभारिए। अब तक दूसरे मुख़तलिफ़ जज़्बे तो तनासुब से कुछ ज़्यादा ही उभरे हैं, मगर माली क़ुरबानी के जज़्बे का ननासुब (Ratio) बहुत ही कम है। हाँ, इस सम्बन्ध में यह बात ज़रूर सामने रहे कि इस जज़्बे की बुनियाद अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी के एहसास पर होनी चाहिए, ज़ाब्ते से यह ख़ूबी पैदा करने की कोशिश न की जाए। हर आदमी को यह सोचना चाहिए कि जब वह मुसलमान हुआ है तो उसके माल को भी मुसलमान होना चाहिए। जिस्म और जान मुसलमान हो जाएँ और माल मुसलमान न हो तो इस्लाम का मक़सद पूरा नहीं होता है। अपने साथ अपने माल को भी इस्लाम के अन्दर लाइए और इसका तरीक़ा यही है कि अपने कमज़ोर भाइयों की मदद और अपने बैतुलमाल की मज़बूती में इसे ख़र्च कीजिए। 'उदखुलू फ़िस्सिलमि काफ़्फ़ह' का मक़सद यही है। फिर क़ुरबानी के जज़्बे की पैमाइश

अल्लाह के रास्ते में ख़र्च किए जानेवाले माल की मिक़दार से नहीं होती, बल्कि उन तकलीफ़ देनेवाली हालतों से होती है जिनका मुक़ाबला करते हुए एक आदमी ख़र्च करता है। इस लिहाज़ से कई मरतबा एक पैसा एक हज़ार रुपया से ज़्यादा वज़नी होता है। ख़ुदा के यहाँ यह नहीं देखा जाता कि दिया कितना, बल्कि यह कि किन मुश्किलों के होते हुए दिया।

दूसरी चीज़ जिसकी पाबन्दी ज़रूर होनी चाहिए, वह हफ़्तेवार इजतिमा है। कई जगहों पर जमाअती निज़ाम मर जाने की वजह यही थी कि लोगों को जोड़कर रखने और जमाअत के साथ उनकी अमली दिलचस्पी को ज़िन्दा रखनेवाले इस रिश्ते की अहमियत को भुला दिया गया। मैं चाहता हूँ कि इस मामले में आगे नर्मी से काम न लिया जाए। हर जगह के सारे मक़ामी अरकानों को हफ़्तेवार इजतिमा की शिर्कत का लाज़मी तौर पर पाबन्द होना चाहिए। जो रुक्न किसी वजह से हाज़िर न हो सके, वह अपनी ग़ैर हाज़िरी के लिए मुनासिब वजह अपने अमीर के सामने पेश करे। अगर किसी की तरफ़ से ग़लत सबब पेश होगा तो आख़िर सच्चाई सामने आ ही जाएगी और जो रुक्न बिना वजह ग़ैर ज़रूरी वजह की बिना पर लगातार चार हफ़्तेवार इजतिमों में शामिल न हो, या एक लम्बे अर्से तक बीच-बीच में हमेशा नाग़ा करता रहे, तो उसके मुतल्लिक़ समझ लिया जाए कि वह जमाअत के निज़ाम की पाबन्दियों को बर्दाश्त करने की सलाहियत नहीं रखता।

हफ़्तेवार मक़ामी इजतिमा के अलावा जहाँ तक ज़िला में या क़रीब के ज़िलों में कई अरकान मौजूद हों, वहाँ पर आपसी सलाह व मशविरे से वक़्त और जगह तय करके हर दूसरे-तीसरे महीने इजतिमा होते रहने चाहिए। जिनका प्रोग्राम इन हिदायतों की रौशनी में बना लिया जाए जो मैंने दरभंगा के इजतिमा के मौक़े पर हफ़्तेवार इजतिमाओं के लिए दी थीं। ख़ासकर जिन इलाक़ों के बहुत-से अरकान देहातों और शहरों में अकेले हों, वहाँ तो इस तरह के सहमाही या दोमाही इजतिमा बहुत ज़रूरी हैं। क्योंकि इसके बिना ये बिखरे हुए अरकान आख़िरकार नष्ट जो जाएँगे।

इसके अलावा अपने आपको मरकज़ से जोड़े रखने में लापरवाही न दिखाइए। इस जुड़ने की कई सूरतें हैं। मिसाल के तौर पर एक शक्ल यह है कि ख़तों के ज़रिए से मुझे हर पहलू से मक़ामी हालात और काम की रफ़तार के मुताल्लिक़ पूरी जानकारी पहुँचाते रहिए। मगर इसका ख़याल रखिए कि चूँकि मेरे पास कोई सेक्रेटेरियट (Secretariat) नहीं है इसलिए कसरत से जवाब तलब ख़त नहीं आने चाहिएँ। बस इतना काफ़ी है कि हर दूसरे-तीसरे महीने काम की रिपोर्ट मरकज़ पहुँचती रहे। यानी जमाअत किस हाल में है, कहीं सुस्ती का दौर-दौरा तो शुरू नहीं हो गया, कहीं काम करने की मशीनरी में कोई ख़राबी तो नहीं पैदा हो गई, कहीं कोई अन्दरूनी या बाहरी फ़ित्ना तो उठ खड़ा नहीं हुआ है? ऐसे हालात में हालात के सुधार के लिए मरकज़ हर ज़रूरी मदद ज़रूर पहुँचाएगा। अगर क़य्यिम जमाअत (General Secretary)

की ज़िम्मेदारियों को अदा करने के लिए मुझे कोई मुनासिब आदमी मिल गया तो वह दूर रहकर मरकज़ की तरफ़ से काम की निगरानी भी करता रहेगा। जब तक यह हालात पैदा न हों आप लोग ख़ुद भी आपस में जुड़े रहें और कभी-कभार मरकज़ में आकर कुछ दिन गुज़ारें। आगे चलकर जब तरबियती मरकज़ क़ायम हो जाएगा तो फिर मक़ामी जमाअतों के अमीर और दूसरे समझदार अरकान यहाँ आकर बहुत ज़्यादा फ़ायदा उठा सकेंगे।

कपूरथला की जमाअत तालीमे बालिग़ान (Adult Education) की जो स्कीम अमल में ला रही है, वह मुझे बहुत पसन्द आई है और मैं चाहता हूँ कि यह काम हर जगह शुरू हो जाना चाहिए। इससे एक तो अल्लाह की राह में बाक़ायदा तौर पर वक़्त की क़ुरबानी करने की आदत पड़ जाएगी, दूसरे अवाम से आपका सीधा ताल्लुक़ बढ़ता चला जाएगा। उनसे सीधे तौर पर बात-चीत के मौक़े हासिल कर लेंगे। और फिर हम तालीम को फैलाकर अपने लिट्रेचर को फैलाने और पैग़ाम को आम करने के लिए बहुत बड़ा मैदान तैयार कर लेंगे। न सिर्फ़ यह, बल्कि जो लोग भी आपकी इस बिना मुआवज़ा ख़िदमत से फ़ायदा उठाएँगे, वे आपके अख़लाक़ से इतना मुतास्सिर हो जाएँगे कि बहुत आसानी से आपकी बात उनके दिलों में उतर जाएगी। इस काम की अहमियत का अन्दाज़ा आप सिर्फ़ इस बात से कर सकते हैं कि हमारी तहरीक के फैलने में सबसे बड़ी रुकावट इस देश की जनता की जिहालत है। दूसरे देशों में तालीम के आम होने की वजह से यह हाल है कि एक किताब इधर प्रेस से निकली और उधर सिर्फ़ एक हफ़्ते में पचास लाख आदमियों के हाथों में पहुँच गई। इससे अन्दाज़ा कीजिए कि ख़्वान्दगी (Literacy) की वजह से ख़यालों के फैलने में तेज़ी कितनी पैदा हो जाती है। इसके बरख़िलाफ़ हमें अपने नज़रियों को लोगों तक पहुँचाने में बहुत देर लगती है और सालों की कोशिशों के बावजूद आबादी के एक बहुत ही थोड़े हिस्से को ख़यालों से मुतास्सिर किया जा सकता है। इस रुकावट को दूर करने में जहाँ तक मुमकिन हो हमें कोशिश करनी चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि हर आदमी यही काम करे। नहीं, सिर्फ़ वे साथी इस नाज़ुक काम का बोझ उठाएँ जो तालीमे बालिग़ान (प्रौढ़ शिक्षा) के लिए ज़रूरी सलाहियतें रखते हों। जामे मिलिया इस्लामिया (नई दिल्ली) ने इस सिलसिले में जो लिट्रेचर छापा (प्रकाशित किया) है, उससे फ़ायदा उठाइए और जहाँ कहीं भी इसमें ख़राबी पाई जाती हो, इससे बचते हुए काम लीजिए। ख़ासकर तालीमे बालिग़ान (Adult Education) का हुनर उनके लिट्रेचर से सीखने की कोशिश कीजिए। फिर जैसे-जैसे आप काम करते जाएँगे, तजुर्बों से आपकी सलाहियतें चमकती जाएँगी और काम की रफ़्तार बढ़ती जाएगी। ख़ुदा करे कि आप अपने अच्छे मक़सद में कामयाब हों।

इस तक़रीर के साथ आख़री बैठक ख़त्म हो गई।

ख़ातिमा (समाप्ति)

आख़री बैठक ख़त्म होने पर ज़्यादातर लोग पहली गाड़ी से चले गए और सिर्फ़ वे थोड़े-से लोग कुछ वक़्त के लिए ठहर गए जिन्हें अमीर जमाअत ने ख़ुद किसी मशविरे के लिए रोक लिया था या जिन्हें अपने मुताल्लिक़ कुछ हिदायतें हासिल करनी थीं।

जहाँ तक इजतिमा के ख़र्चों का ताल्लुक़ है, हमारे यहाँ सजावट और दिखावे में फ़ुज़ूल ख़र्च सिरे से हुए ही नहीं। रही रहने और खाने-पीने की ज़रूरतें, तो उनपर भी बहुत कम ख़र्च किया गया। डेढ़ सौ (150) लोगों के रहने और छः वक़्त खाने और नाश्ते पर इस मँहगाई के ज़माने में हमारी लागत चार सौ रुपये (Rs. 400) के लगभग रही। यह सारा बोझ जमाअत के बैतुलमाल पर डाला गया था, क्योंकि चन्दे की अपीलें करना हमारी पॉलिसी (Policy) के ख़िलाफ़ है। मगर बिना किसी अपील के इजतिमा में शामिल होनेवालों ने सिर्फ़ अपना फ़र्ज़ समझकर और जिम्मेदारी का एहसास करते हुए इजतिमा के दिनों में जो रक़म बैतुलमाल में जमा कराई, वह इजतिमा पर हुए ख़र्च से बहुत ज़्यादा थी।

नोट : इस किताब में से 'माज़रत' (शिरकत न करने के असबाब) और हिसाब आमद व ख़र्च (आय-व्यय) 1943 ई० निकाल दिया गया है।